द्वितीय अध्याय

प्रो॰ 'मागध' जी का जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं साहित्यिक कृतित्व

भूमिका :

प्रस्तुत शोध प्रबंध को क्रम देने के लिए डॉ॰ 'मागध' की जीवनी और उनके कृतित्व के बारे में जान लेना आवश्यक है । किसी भी व्यक्ति का जीवन घटना विहीन नहीं होता । प्रत्येक मनुष्य के जीवन में छोटी-बड़ी घटनाएँ घटती रहती हैं । यह घटनाएँ व्यक्ति के कार्य, व्यवहार, स्वभाव, आदि को प्रभावित करती है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के लिखने के पूर्व भी डॉ॰ 'मागध' की जीवनी लिखी गयी है । पहली बार डॉ॰ 'मागध' के जीवनी और साहित्यिक कृतित्व पर प्रो॰ अनन्त कुमार नाथ द्वारा संपादित अभिनंदन ग्रंथ 'संस्कृति साधक प्रो॰ कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध' में प्रो॰ धर्मदेव तिवारी ने 'मगध से मणिपुर' में डॉ॰ 'मागध' की संक्षिप्त जीवनी लिखी है । दूसरी बार प्रो॰ अनन्त कुमार नाथ के निर्देशन पर डॉ॰ भूपेन्द्र सिंह ने अपने पीएच. डी. शोध प्रबंध 'डॉ॰ कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध' व्यक्तित्व और कृतित्व' (राजीव गांधी विश्वविद्यालय, ईटानगर 2002) में 'मागध' जी के जीवनी को विस्तार दिया है । पुन: तीसरी बार डॉ॰ वीणा वर्मा ने अपने शोध प्रबंध 'डॉ॰ कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध': जीवनी और साहित्य (मगध विश्वविद्यालय, बोध गया, 2010 ई॰) में उपर-उल्लेखित दोनों ग्रन्थों के आधार पर 'मागध' की जीवनी लिखी है । मैंने डॉ॰ भूपेन्द्र सिंह वाली पुस्तक को आधार तो बनाया है, किन्तु डॉ॰ 'मागध' के भ्राता प्रेम नारायण के पटना निवास पर उनसे बातचीत कर नयी जानकारी प्राप्त की यत: उन्हें यहाँ अपेक्षित महत्त्व दे सकी हूँ ।(पटना, बिहार में भेंट सितंबर,2013) इस प्रकार प्रस्तुत जीवनी विषयक अंश सबसे भिन्न और अधिक विस्तृत हो सका है । आगे 'मागध' जी के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व पर विस्तार से विचार किया गया हैं ।

2.1 प्रो॰ 'मागध' का जीवनवृत्त :

नालंदा जिले के कोल्हुआ नामक गाँव से पैमार नदी उत्तरवाहिनी बनकर प्रवाहित होती है और एक कोस के बाद वही पश्चिम वाहिनी हो जाती है । जिस स्थान पर पैमार पश्चिमाभिमुखी होती है, उसे उलटेन कहा जाता है । वहीं से सिंचाई हेतु पैमार की एक धार उत्तरवाहिनी (नोहसा महाल के लिए) और दूसरी बेन महाल आदि की सिंचाई के लिए पूर्ववाहिनी हो जाती है । उन्हीं दो धाराओं के तटीय कोण पर अर्थात नोहसा धार के पूर्वी और बेन धार के उत्तरी तट पर नोहसा महाल का एक छोटा सा पुरवा छकौड़ी बिगहा है ।

दक्षिण बिहार के मगध अंचल की सभी नदियाँ, गंगा को छोड़कर, बरसाती हैं । केवल पैमार में ही (1980 ई॰ से पहले) सालों भर पानी बहता था । माली साँढ़ में छिलका (1972 ई॰) बन जाने के बाद नदी के पेट में गाद भर जाने से वह भी धीरे-धीरे बरसाती बन गयी । कोल्हुआ से जो पूर्ववाहिनी मुख्यधार थी उसी से नीरपुर के निकट से नालंदा विश्वविद्यालय (बौध महाबिहार) को सालों भर पानी मिलता था । "उपरिचर वसु ने गिरिब्रज से वहाँ रह रहे मुंडारी समुदाय को भगाकर पहलीबार वसुमतीपुर नाम से राजगृह (राजगीर) बनाया । बाद में वहीं 'ब्रिहद्रथपुर', 'कुशाग्रपुर' जैसे नामों से भी जाना गया ।"[१] परमेश्वर प्रसाद के अनुसार "डॉ॰ 'मागध' का गाँव छकौड़ी बिगहा मगध साम्राज्य के (कहना चाहिए कि भारत साम्राज्य के प्राचीन राजधानी नगर राजगृह गिरिब्रज के) हृदयस्थल में अवस्थित है । पैमार नदी मगध क्षेत्र की संस्कृति का साक्षी और उसके किनारे बसे लोग मगध संस्कृति के निर्माता रहें हैं । कहा जाता है कि सर्वप्रथम नरसिंह नामक एक किसान ने वहाँ अपने नाम पर नरसिंहपुर नामक बस्ती कोई ढाई-तीन सौ वर्ष पूर्व बसाई थी । वहीं बस्ती आज छकौड़ी बिगहा के नाम से जानी जाती है, जबकि सरकारी कामकाज में आज भी गाँव का नाम नरसिंहपुर (नोहसा) लिखना अनिवार्य होता है । गाँव के संस्थापक नरसिंह जी के वंशधर आज पचास परिवारों में बंट कर फल-फूल रहे है । कुछ वंशज गाँव छोड़कर अन्यत्र (वेशक्क, हिंदूपुर, मदनपुर,चंदनपुरा) जा बसे हैं । शेष पचास-साठ घर दूसरों के हैं । गाँव में छह जातियों के लोग निवास करते हैं- यादव-1, कुम्हार-4, नाई-4, बढ़ई-7, धानूक (जसवार)-23 और घमैला(कुर्मी)-

50 । "नरसिंह नामक व्यक्ति द्वारा बस्ती बसाये जाने के चलते गाँव का नाम नरसिंहपुर था पर उसकी जगह नया नाम छकौड़ी बिगहा कब से और क्यों चल पड़ा, इसके बारे में निश्चित सूचना का अभाव है ।"[२] इसके संबंध में दो अनुश्रुतियाँ हैं जो प्राय: एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं । यह गाँव इसलामपुर के मुस्लिम जमींदार के नोहसा मौज़ा के अंतर्गत पड़ता था । जमींदार के पारिवारिक बँटवारे में यह गाँव छह कौड़ी (छकौड़ी) हिस्से में पड़ा । इस कारण इस गाँव को छकौड़ी बिगहा कहा गया । दूसरी अनुश्रुति है कि जमींदार के देख-भाल करनेवाले कारिंदों में एक का नाम छकौड़ी मियाँ था, इस कारण यह गाँव छकौड़ी बिगहा कहा गया । जो भी हो पर इतना निश्चय है कि मूल नाम नरसिंहपुर या नरसिंह बिगहा से छकौड़ी बिगहा नाम परिवर्तन के चलन के पीछे कोई प्रबल कारण अवश्य रहा होगा ।

2.1.1 बाल्य जीवन और शिक्षा:

कृष्णनारायण जी का जन्म विक्रमाब्द 1990 के बैशाख मास की शुक्ल सप्तमी (गंगा सप्तमी अथवा गंगोत्पति दिवस) मंगलवार को अर्थात अंग्रेजी तिथि के अनुसार 2 मई 1933 ई॰ को हुआ था । कृष्णनारायण जी अपने माता-पिता की एकमात्र संतान है । वे मात्र तीन वर्ष के भी नहीं हुए थे तभी उनकी माँ श्रीमती शीला देवी का देहांत 24 मार्च, 1936ई॰ को हो गया । उसके पश्चात कृष्णनारायण जी के लालन-पालन का दायित्व उनकी नानी (मातामही) पर पड़ा । माता शीला देवी लोदीपुर (खड्डी)निवासी श्री ब्रजनारायण गराई जी की सुपुत्री थी । कृष्ण नारायण जी के मातृ पक्ष का वंश समाप्त हो चुका है, केवल एक मौसेरे भाई (श्री सुरेश प्रसाद जी लोदीपुर, चम्हेरा) जीवित है ।

कृष्णनारायण जी के पिता स्व॰ लक्ष्मी नारायण जी (1905-1989 ई॰) हिंदी तथा उर्दू के अच्छे जानकार थे । बचपन में उन दिनों उन्हीं के दालान में एक मौलवी साहब उर्दू पढ़ाते थे । कभी-कभार मौलवी साहब की अनुपस्थिति में लक्ष्मीनारायण जी बच्चों को उर्दू पढ़ाया करते

थे, इसलिए वे भी मौलवी साहब के नाम से जाने जाते थे । सन 1939 ई॰ में वे अर्द्धांग (आधे अंग का लकवा) से ग्रस्त हो गए । चार-पाँच वर्षों के लगातार इलाज से थोड़ा सुधार तो हुआ, पर वे मृत्यु पर्यंत (मकर संक्रांति, 1989) रोग ग्रस्त ही रहे ।

कृष्ण नारायण जी के पितामह (लक्ष्मीनारायण के पिता) स्व॰ गुरु नारायण (गुरु सहाय) जी उर्दू और फारसी के विद्वान एवं अरबी के जानकार थे । ज्योतिष में उनकी गहरी पैठ थी । कबीर पंथी मठ, नौडीहा की देख-भाल करनेवाले कारिंदों में से वे एक थे एवं मुंशीजी के नाम से जाने जाते थे । उनका कबीर पंथ के उदार विचारों से गहरा लगाव था । उनका व्यक्तित्व जितना गुरु-गंभीर था उतनी ही प्रकृति उदार थी । वे न्याय प्रिय होने के कारण अधिक लोकप्रिय थे । कृष्ण नारायण जी पर उनके पितामह का प्रभाव अपेक्षया अधिक पड़ा है ।

कृष्ण नारायण जी के माता का दाह संस्कार गाँव के श्मशान में ही किया गया था जो उनके दालन से मुश्किल से 500 गज पूर्व स्थित है । श्मशान नागफनी के काँटों से भरा था एवं शिरीष के कई बड़े-बड़े पेड़ थे । शिरीष के एक बड़े पेड़ में खढोर था । शिशु कृष्ण नारायण सबकी आँख बचाकर श्मशान पड़ चला जाता और माँ की चीता पर खेलता रहता । जब कोई उसे खोजने जाता तो वह खढोर में छिप जाता । उस समय बालक कृष्ण नारायण की आयु तीन वर्ष से भी कम थी । यह लोगों की परेशानी का बड़ा कारण बना । उससे छुटकारा पाने के लिए दो उपाय किए गये । पहला श्मशान के नागफनी काँटों को काटकर जला दिया गया और दूसरा श्री कृष्ण नारायण को पैमार नदी के पार रामगंज प्राइमरी विद्यालय में भेजने का निश्चय किया गया । बालक कृष्ण नारायण अकेले विद्यालय नहीं जा सकता था, इसलिए एक व्यक्ति को नियुक्त किया गया जो सबेरे स्कूल ले जाता और दोपहर को खाने हेतु ले आता और पुनः उसे स्कूल पहुँचा देता । यह क्रम कई महीनों तक चला । बाद में बालक कृष्ण नारायण अन्य बच्चों के साथ स्वतः स्कूल चला जाता । स्कूल भेजने का मूल उद्येश्य बालक कृष्ण नारायण को श्मशान में जाने की आदत से छुड़ाना था ।

बच्चे नटखट और शरारती तो होते ही हैं । बालक कृष्ण नारायण कुछ अधिक ही शरारती था । विद्यालय से लौटते समय कभी दोपहर कभी संध्या को अन्य बालकों के साथ या कभी अकेले ही पैमार नदी में स्नान कर लेता । इस क्रम में कभी कमीज, कभी पेन्ट और कभी कमीज-पेन्ट दोनों नदी की धार में बहा देता या उसकी भूल से बह जाते । इस निमित्त उसे मार भी खानी पड़ती पर वह आदत छूटी नहीं । अंततः इसका भी उपाय किया गया । रामगंज प्राइमरी विद्यालय के पास ही मदडू मियां का घर था जो करघे पर मोटिया कपड़े की बुनाई और सिलाई (दर्जी का काम) भी करता था । उन्हें बालक कृष्ण नारायण के पिताजी ने कह दिया था कि जब यह (बालक कृष्ण) नंगे या उघारे आये तो आप इसे फीते बाला एक पेन्ट या हाफ कमीज सिलकर दे । रामगंज प्राइमरी विद्यालय में पढ़ाई करते समय बालक कृष्णनारायण ने पता नहीं कितने पेन्ट, कमीज पैमार नदी में बहा दिये ।

बालक कृष्ण नारायण जरूरत से ज्यादा नटखट और शरारती था । अपने साथियों से किसी भी बात पर लड़ जाता । छोटा होने के कारण बड़ों से पीटता भी एवं उनकी माताएँ जब बालक कृष्ण नारायण के पिता से शिकायत करते तो पिताजी से भी मार खाता । 'मागध' जी स्वयं कहते है कि पहली कक्षा से छठी कक्षा तक शायद ही ऐसा कोई दिन गया होगा जिस दिन उनकी पिताजी से पिटाई नहीं हुई हो, पर पितामह से कभी डाट खाने या पिटाई खाने की नौबत नहीं आयी । डॉ॰ 'मागध' के व्यक्तित्व पर उनके पिता से अधिक पितामह का प्रभाव पड़ा ।

गाँव से एक कोस दूर कुतलुपुर गाँव में नया मिडिल स्कूल खुला था, उसका अपना भवन भी नहीं था । एक किसान के दोमंजिले भवन में विद्यालय चलता और उसी के कुछ कमरे छात्रावास भी थे । प्राइमरी की तीसरी कक्षा उत्तीर्ण होने के बाद मिडिल स्कूल कुतलुपुर की चौथी कक्षा में बालक कृष्ण नारायण का नामांकन हुआ । वह दशाधिक बच्चों के साथ वहीं पढ़ने जाता । रास्ते में एक आहर पड़ता था जिसमें बरसात के दिनों पानी भरा रहता था । सभी बालक उसमें नंगे होकर स्नान करते । उसके बाद ही वे घर जाते । खेतों में चने की फसल लगी

होती, सभी बालक मिलकर स्कूल जाते समय और आते समय उजले बड़े चने उखाड़ कर खाते ।

बालक कृष्ण नारायण की रुचि अब पुस्तकों में बढ़ गयी थी । घर का वातावरण, पिताजी और पितामह के पुस्तक प्रेम ने इसमें बड़ी भूमिका अदा की । जब वह छठी श्रेणी में था, तभी उसके मन में एक पुस्तकालय खोलने का विचार जगा । अपने कई छात्र मित्रों के साथ उसने इसे मूर्त रूप दिया । सन 1946 ई॰ में छात्र हितैषी पुस्तकालय, छकौड़ी बिगहा, नाम से उसने अपने दालान में एक पुस्तकालय खोला । उसमें पिताजी और पितामह की सभी हिंदी किताबों को रखा गया और सब पर 'छात्र हितैषी पुस्तकालय' की मुहर लगा दी गयी । उर्दू और फारसी वाली पुस्तकें अलग रखी गयी । पितामह ने ऐसा करने से बहुत माना किया, उन्होंने कहा तुम्हारे दोस्त ही सारी किताबें ले जायेंगे । पर बालक कृष्ण नारायण ने उनकी बात न मानी । अंत: वही हुआ, जब बालक कृष्ण नारायण हाईस्कूल में पढ़ने के लिए घर से बीसों कोस दूर चला गया तब उसके कुछ दोस्त पुस्तकालय की सभी अच्छी किताबें ले गये । इस प्रकार पुस्तकालय वाली कहानी समाप्त हो गयी । 'मागध' जी के पास अब भी कुछ पुस्तकें बची हुई हैं जिसपर 'छात्र हितैषी पुस्तकालय' की मुहर लगी हुई है । पुस्तकालय खोलने की इच्छा भले ही समाप्त हो गयी हो पर 'मागध' जी में नयी-नयी पुस्तकें खरीदना, पढ़ना और संग्रह करने की आदत अब भी जारी है जबकि उन्होंने अपना सारा संग्रह नव नालंदा बौद्ध महाविहार, नालंदा (डीम्ड यूनिवर्सिटी) को दान में दे दिया हैं ।

मिडिल स्कूल में पढ़ाई करते समय ही बालक कृष्ण नारायण ने गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा आयोजित 'गीता' और 'रामायण' की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की । उनका माध्यमिक विद्यालय कुतलुपुर भी परीक्षा का एक केंद्र था । 'गीता' और 'रामायण' की परीक्षाओं ने भी उनके व्यक्तित्व के विकास में अच्छी पहल की, जिसका परिणाम आगे दिखाई पड़ा । सातवीं कक्षा की पढ़ाई के लिए वे स्कूल में ही रहने लगे । स्कूल की बोर्डिंग में रहने के लिए जाते समय पितामह ने बालक कृष्ण को रघुनंदन प्रसाद शुक्ल द्वारा हरिगीतिका छंद में अनूदित 'श्री मदभगवत गीता' की

अपनी प्रति दी और कहा कि 'जब कभी तुम्हारा मन पढ़ाई से उचट जाए या किसी प्रकार की समस्या आए तो तुम इसे पढ़ा करना, इससे लाभ होगा ।' श्री मदभगवत गीता की वह प्रति आज भी 'मागध' जी के पास है । उससे गीता तत्व को समझने में काफ़ी मदद मिलीं ।

स्कूल की बोर्डिंग में रहनेवाले बच्चे बालक कृष्ण नारायण से अवस्था में प्राय: बड़े थे । उनमें कई छात्र बीड़ी पीते थे । उनलोगों ने ही बालक कृष्ण को बीड़ी पीने की आदत लगाई जो बाद में सिगरेट पीने में बदल गयी । उन छात्रों ने कहा था कि यदि वे बीड़ी नहीं पीयेंगे तो मास्टर साहब को कह देंगे और उनकी पिटाई होगी । अंतत: वे बीड़ी पीने लगे ।

बालक कृष्ण नारायण अत्यंत स्वच्छंद और शरारती थे, उनके गाँव का शायद ही कोई पेड़ बचा हो, जिस पर चढ़कर 'हॉल पत्ता' नहीं खेला हो । वैसे ही शायद ही ऐसा कोई ताड़ पेड़ बचा हो जिस पर चढ़कर उसका फल (फेदा) न काटा हो । गर्मी की छुट्टियों में उनका यह कार्य-क्रम चलता । घर का एकमात्र बालक होने के कारण पिताजी एवं पितामह चिंतित रहते, फिर भी वे भरी दोपहरी में सबकी आँख बचाकर बगीचों में पहुँच ही जाता । दोपहर में घर के लोगों को उनके दुर्घटनाग्रस्त होने की चिंता लगी रहती । अंत: दोपहर को उन्हें दालन पर रोक रखने के लिए पितामह ने एक उपाय किया । दोपहर को जब सभी आराम कर रहे होते तब बालक कृष्ण नारायण को 'सुखसागर' या 'प्रेमसागर', 'महाभारत', 'रामायण' जैसे ग्रन्थों को पढ़ने देते और सभी उसे सुनते । इससे उनका दोपहर को बाहर निकलना तो बंद हुआ ही, अनजाने में ही उनके मन में धार्मिक साहित्य के प्रति रुचि जागने लगी, जिसका परिणाम आगे चलकर उनके लेखन में दिखाई पड़ा । हाईस्कूल में पढ़ते समय उनकी शरारतें अधिक बढ़ गई । वह किन्हीं दो व्यक्तियों को झगड़ते देखता तो खड़ा होकर यह जानने की कोशिश करता कि दोषी कौन है ? और दोषी कौन है, जानने पर उसकी पिटाई कर देता । विद्यार्थी भी अगर बाज़ार में गलत हरकत करते तो वह उन्हें भी पीटते । जब वे नौवीं कक्षा में थे तभी उनका विवाह हो गया, जबकि वे विवाह का अर्थ ही नहीं समझते थे । ग्यारहवी कक्षा में पढ़ाई करते समय उन्हें अपनी गलतियों के कारण विद्यालय से निकाल दिया गया ।

इसप्रकार उनकी पढ़ाई बाधित हुई । कुछ महीनों तक मटरगस्ती करते रहे और फिर स्थानीय अभिभावक, जो रिश्ते में उनके मामा लगते थे, की कंपनी (इंडिया ट्रांसपोर्ट कंपनी लिमिटेड) में क्लार्क की नौकरी करने लगे । वहाँ के मेनेजर भले आदमी थे और उनसे काफ़ी प्यार करते थे । महीने में दो-चार दिन कंडक्टर के रूप में किसी गाड़ी पर भी जाना पड़ता था । इस कार्य से इन्हें अच्छी-ख़ासी कमाई हो जाती थी । घर पर जब पिताजी और पितामह (श्री महावीर नारायण) को इस घटना की जानकारी हुई तो उनके पितामह उनसे मिलने गये और जाते रहे परंतु वे इनसे कभी मिलते नहीं थे । वे निराश होकर लौट जाते । अनंत: 'मागध' जी की नानी वहाँ पहुंची और वहाँ रहने लगी तब वे पकड़ में आये और नानी के समझाने-बुझाने के पश्चात लगभग एक वर्ष बाद घर आये । वह समय था जनवरी 1951 ई॰ । इधर घर और गाँववालों ने भी नहीं पूछा कि एक वर्ष तक वे क्या करते रहे ? पढ़ाई क्यों छोड़ी ? इस घटना ने उनके जीवन में एक नया मोड़ लाया ।

तभी और एक घटना घटी । सबेरे का समय था– कृष्ण नारायण जी अपने दालानवाले कुएं पर दतुवन कर रहे थे, तभी पास के गाँव से एक बुजुर्ग व्यक्ति आये । कृष्ण नारायण जी ने उन्हें प्रणाम किया । उन्होंने आशीर्वाद तो दिया, साथ ही पढ़ाई छोड़ देने के लिए डांट भी पिलायी एवं दालान में चले गये । जनवरी का महीना था । कृष्ण नारायण के पिता पुआल पर कम्बल बिछा कर धूप में कई व्यक्तियों के साथ बैठे कुछ बातें कर रहे थे । वे सीधे उन्हीं के पास गये और कृष्ण नारायण के पिताजी को डांट पिलानी शुरू की –'लक्ष्मी, तुम्हारा केवल एक ही बेटा है और उसे भी तुम पढ़ा नहीं सके, आदि-आदि ।' चूँकि बात कृष्ण नारायण जी के बारे में हो रही थी, इसलिए वे भी कान लगाकर सुनने लगे । लगभग पंद्रह मिनट तक आगंतुक डांट पिलाते रहे । उनके चुप होने पर कृष्ण नारायण जी के पिता ने बड़े रूआँसे स्वर में इतना भर कहा – 'चाचा, यदि यह मेरा बेटा है तो अवश्य पढ़ेगा और खूब पढ़ेगा ।' पिताजी के उस एक वाक्य ने कृष्ण नारायण जी के जीवन को सही दिशा प्रदान की । वहाँ संभवत और भी बातें हुई हों, पर कृष्ण नारायण जी अपने पिता के उस एक वाक्य को सुनकर वहाँ से सीधे घर आ गये । मातामही से माँगकर चूड़ा-दही खाया और उन्हें बिहारशरीफ जाने की बात बताकर वहाँ से चल दिये । महीने भर खाक छानने के पश्चात महात्मा

गांधी ख़ानक़ाह हाईस्कूल, इसलामपुर, की ग्यारहवीं कक्षा में उन्होंने अपना नामांकन कराया । घरवालों को इसकी जानकारी महीनों बाद हुई । उसी स्कूल से सन 1952 में उन्होंने मेट्रिकुलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण की । इस प्रकार, स्कूली पढ़ाई में इनका एक वर्ष का समय वर्वाद हो गया था ।

कृष्ण नारायण जी गणित में कमजोर थे । अलजबरा के प्रश्न हल करते थे । परंतु केवल ज्यामिति के प्रश्नों का समाधान कर परीक्षा उत्तीर्ण हो जाते थे । इसी कारण दसवीं-ग्यारहवीं कक्षा में वैकल्पिक विषय के रूप में उच्च गणित की जगह संस्कृत का चुनाव किया, परंतु कुछ छात्रों द्वारा चिढ़ाये जाने पर जिद में वैकल्पिक विषय के रूप में उच्च गणित ही पढ़ने का निश्चय किया एवं त्रिकोणमिति और मीन सुरेशन के प्रश्नों को छोड़ कर केवल ज्यामिति के प्रश्नों को हल कर उच्च गणित के साथ ही मेट्रिकूलेशन की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए ।

उनकी इच्छा शक्ति बड़ी प्रबल थी । वे जैसा करने को सोचते वैसा ही करते । ख़ानक़ाह हाईस्कूल में लगभग एक वर्षीय छात्र जीवन में भी उनकी शरारतें कम नहीं हुई । बहुधा वे दूसरों के कारण झगड़े मोल ले लिया करते । इस्लामपुर में सप्लाई इंस्पेक्टर को पीटना, रेलवे स्टेशन के पूरे स्टाफ, टी.टी.ई. एवं गार्ड को पीटना जैसी घटनाएँ इसी के उदाहरण हैं । स्कूल में नामांकन के एक सप्ताह बाद ही क्लास में एक लड़के को जूते से पीटा । इन सभी घटनाओं पर प्रधानाध्यापक की नजर उनपर सदा रहती । उनपर कई मुकदमें भी हुए पर प्रधानाध्यापक ने ही सब से मुक्ति दिलायी । मैट्रिक की परीक्षा देकर स्कूल से जाने के पूर्व प्रधानाध्यापक अब्दुल रजाक साहब ने उन्हें बुलवाया । उनसे घंटों बातचीत की और समझाते हुए उनसे एक चीज की मांग की । कृष्ण नारायण जी द्वारा वचन दिए जाने पर उन्होंने मात्र इतना ही कहा कि 'मेरी मांग यही है कि आज से तुम किसी को तब तक गाली नहीं दोगे जब तक वह तुम्हें गाली न दे । किसी से तब तक मारपीट नहीं करोगे जबतक वह तुम्हें न मारे । किसी दूसरे के लिए झगड़ा मोल नहीं लोगे ।' चूँकि कृष्णनारायण जी वचन वद्ध हो चुके थे, इस कारण आगे उन्होंने इसका पाठन करना प्रारम्भ किया । शुरू-शुरू में कठिनाई अवश्य हुई, पर झगड़ा करते ही अचानक प्रधानाध्यापक अब्दुल रजाक को

दिया गया वचन और उनका चेहरा ध्यान में आ जाता । धीरे-धीरे उनके स्वभाव में काफ़ी परिवर्तन आया । बातचीत के दौरान डॉ॰ 'मागध' ने स्वीकार किया कि 'मेरे भीतर आज भी वह राक्षस बैठा है जिसे अब्दुल रजाक साहब को दिए गए वचन ने दबा रखा है ।'

आगे की पढ़ाई उन्होंने नालंदा कॉलेज, बिहार शरीफ में पूरी की । इंटर की पढ़ाई में एक विषय भूगोल भी था । भूगोल की एक शैक्षिक यात्रा में कृष्ण नारायण जी ने भाग लिया था । यात्रा से लौटने पर सबको अपनी यात्रा का अनुभव और वर्णन लिखकर विभागीय सभा में प्रस्तुत करना था । इसे संयोग ही कहा जाएगा कि उनका यात्रा वर्णन ही सर्वोत्तम माना गया और सभा के अध्यक्ष रसायनशास्त्र के विभागाध्यक्ष प्रो॰ रामसेवक वर्मा के हाथों उन्हें भूगोल की ही एक पुस्तक मिली । कृष्ण नारायण जी का यहीं पहला आलेख था । बाद में सन 1953 ई॰ की कॉलेज मैगजीन में उसे प्रकाशित भी किया गया । सन 1953 ई॰ में ही इनकी मातामही का भी देहांत हुआ ।

कृष्ण नारायाण जी के पिता अर्द्धांग पीड़ित होते हुए भी पितामह के जीवन काल तक घर का दायित्व संभालते रहे । सन 1955 ई॰ में उनकी मृत्यु हो जाने के पश्चात घर का पूरा दायित्व उन्होंने अपने छोटे भाई महावीर नारायण को सौप दिया । कृष्ण नारायण जी की पढ़ाई (बी.ए. आनर्स) का अंतिम वर्ष चल रहा था । पितामह की मृत्यु से उसमें बड़ा व्यवधान आ गया, उन्हें कॉलेज की पढ़ाई छोड़कर भागलपुर में पशुपालन विभाग का संक्षिप्त कौर्स करने को विवश होना पड़ा । वहाँ हर महीने तीस रुपये मिलते थे, उसीसे उनका मासिक व्यय पूरा हो जाता था । इस प्रकार ऐसा लगा मानो वे ग्रेजुएट भी नहीं हो सकेंगे । इस घटना से वे ही नहीं बल्कि उनके भूगोल के अध्यापक धनंजय चटर्जी भी आहत हुए । उन्हें विश्वास था कि भूगोल पढ़ने वाले छात्रों में केवल यहीं उत्तीर्णता के लायक है । चटर्जी ने काफ़ी मेहनत करके उन्हें इस बात के लिए राजी किया कि वह परीक्षा में भाग ले । इस निमित्त कॉलेज की सारी बाधाएँ उन्होंने दूर की । 'मागध' जी भागलपुर में भी समय निकाल कर पढ़ लिया करते थे । इस प्रकार उन्होंने बी॰ए॰ आनर्स की परीक्षा सन 1956 ई॰ में पास की । कॉलेज जीवन में वे ग्रंथ के प्रो॰ श्री सिद्धेश्वर प्रसाद जी और

भूगोल के प्रो॰ श्री धनंजय चटर्जी के विचारों से सर्वाधिक प्रभावित हुए । इस तथ्य को वे अनेक अवसरों पर दुहराते रहे है कि उनके जीवन को मोड़ने वालों में प्रधानाध्यापक अब्दुल रजाक साहब और साहित्यिक दृष्टि से प्रभावित करनेवालों में प्रो॰ श्री सिद्धेश्वर प्रसाद जी सर्वग्रणी हैं । बाद में वे आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की रचनाओं से भी प्रेरित-प्रभावित हुए ।

2.1.2 विद्यालय शिक्षक के रूप में कर्मजीवन:

नालंदा कॉलेज से बी.ए.(आनर्स) पास करने के पश्चात कृष्ण नारायण जी की आगे की पढ़ाई नहीं हो सकी । पारिवारिक कारणों से उनकी आगे की पढ़ाई जारी नहीं रह सकी । एक चचेरी बहन विवाह के योग्य हो रही थी । कहा गया कि पढ़ाई में खर्च होते रहेंगे तो लड़की के विवाह के लिए धन कहाँ से आयेगा । कृष्ण नारायण जी के पिता ने उन्हें आगे की पढ़ाई का इरादा छोड़ कुछ काम में जुटने की राय दी । उन दिनों स्कूलों में भूगोल शिक्षक की माँग अधिक थी । कृष्ण नारायण जी का बी.ए. में एक विषय भूगोल ही था । अत: गया, संप्रति जहानाबाद जिला के हाईस्कूल, सोनवां, में उनकी नियुक्ति भूगोल शिक्षक के रूप में हुई । स्कूल प्रबंधकारिणी समिति के अध्यक्ष जहानाबाद के एस. डी. ओ. थे । उन दिनों ग्रेजुएट शिक्षक का वेतनमान 60 रुपये से 90 रुपये था । कृष्ण नारायण जी की, दो वार्षिक बढ़ोत्तरी के साथ 64 रुपये मासिक वेतन के अतिरिक्त दस रुपये मासिक भत्ता अर्थात कुल 74 रुपये मासिक वेतन पर नियुक्ति हुई । उसी दिन विद्यालय के स्थायी प्रधानाध्यापक की भी नियुक्ति हुई जो सरकारी हाईस्कूल से सेवामुक्त प्रधानाध्यापक थे । इस प्रकार कृष्णनारायण जी ने अगस्त, 1956 से स्कूल शिक्षक के रूप में नौकरी शुरू की ।

स्कूल में शिक्षक का कार्य-भार संभालने से पूर्व कृष्ण नारायण जी ने घर के सरदार चाची जी से पहले महीने के खर्च आदि के लिए तीस रुपये की माँग की पर वह भी उन्हें नहीं मिला । हो सकता है कि उस समय उनके पास रुपये नहीं रहे हों, पर घर का मुखिया होने के नाते उन्हें इसका प्रबंध तो करना ही चाहिए था या कह सकते थे कि किसी से ले लीजिए । सीधा उत्तर मिला रुपया

नहीं है, कहाँ से दूँ। इससे कृष्णनारायण जी का मन खिन्न हो उठा। वे बड़े दुखी हुए। अपने गाँव के ही एक मित्र से ही उन्होंने रुपये कर्ज लिए और सीधे स्कूल चले गये जहाँ उन्होंने कार्यभार ग्रहण किया। विद्यालय गाँव से थोड़ी दूर आम के बगीचे के मध्य था। विद्यालय नया था। मंजूरी केवल नौवें कक्षा तक की थी। मैट्रिकुलेशण तक पढ़ाने का आदेश मिला था, मंजूरी मिलनी बाकी थी। कार्यालय के अतिरिक्त किसी भी कमरे में खिड़कियां क्या दरवाजे तक नहीं लगे थे। वे किवाड़ बन आये थे जो कार्यालय के ही एक कोने में पड़े थे। बाहर से आनेवाले शिक्षकों की रहने की कोई व्यवस्था नहीं थी। स्कूल में कार्य भार ग्रहण करने के बाद एक सप्ताह तक विद्यालय के सेक्रेटरी श्री सरपु बापू के यहाँ ही कृष्ण नारायण जी को रहना पड़ा। उनके पास पहले से ही एक शिक्षक रह रहे थे। कृष्ण नारायण जी को लगा कि वे वहाँ नौकरी करने के लिए गये है इसलिए उदार मन सरपु बापू को कष्ट देना ठीक नहीं होगा। उन्होंने कोई व्यवस्था न होने तक विद्यालय के कार्यालय में रहने की इच्छा जतायी। सरपु बापू के मना करने पर भी वे वहीं रुक गये। भोजन बनाने की व्यवस्था तो थी नहीं, अत: दो-तीन दिनों तक सरपु बाबू के यहाँ से ही भोजन और नाश्ता आता रहा। रात में एक वरहिल भी आकर विद्यालय में सोता। दो-तीन दिनों में भोजन बनाने की व्यवस्था कर लिए जाने पर स्कूल का चपरासी लखन भोजन बनाने लगा। इस प्रकार 'मागध' जी के एक नए जीवन का आरंभ हुआ। विद्यालय तो नया था ही, वहाँ के छात्र भी अवस्था में बड़े और उदण्ड भी थे। अनुशासन नाम की कोई चीज़ तो मानो थी ही नहीं। कृष्ण नारायण जी को स्कूल में रहते हुए अभी मुश्किल से आठ-दस दिन हुए ही होंगे कि अनुशासन भंग किए जाने की एक बड़ी घटना हुई, उन्हें इस बात का बहुत बुरा लगा। फलत: उन्होंने दोषी विद्यार्थियों की जमकर पिटाई की, इससे छात्रों में ही नहीं कुछ अभिभावकों में भी बलबला मचा। सेक्रेटरी श्री सरपु बापू ने कृष्ण नारायण जी के कार्य की न केवल सराहना की वरन छात्रों में जो असंतोष का भाव जगा था, उसे भी उन्होंने शांत किया। इसका विद्यालय के अनुशासन में दूरगामी प्रभाव पड़ा। नवनियुक्त प्रधानाध्यापक श्री गिरिजा बाबू ने महीनों बाद कार्यभार ग्रहण किया। वे भी 'मागध' जी के साथ ही विद्यालय कार्यालय में रहने लगे। बाद में उन्होंने बताया कि विद्यालय के सेक्रेटरी श्री सरपु

बापू से उनकी पुरानी रिश्तेदारी है । वे पहले इसी कारण यहाँ नहीं आ सके थे बाद में कृष्ण नारायण जी के स्कूल में ही रहने की बात जानकर उन्होंने भी स्कूल में ही रहने का निश्चय कर कार्यभार संभाला । जब तक दूसरे कमरे में रहने की व्यवस्था ठीक नहीं हुई तब तक कृष्ण नारायण जी और प्रधानाध्यापक श्री गिरिजा बाबू कार्यालय के एक कमरे में ही रहते, सवेरे ही उसे विद्यालय के लिए समेट दिए जाते । भोजन का प्रबंध पहले से ही स्कूल के चपरासी लखन ने संभाल लिया था ।

कृष्ण नारायण जी कुशल शिक्षक तो थे ही, अनुशासन प्रिय भी थे स्कूल को शीघ्र ही उन्होंने एक निश्चित अनुशासन में ढाल लिया था । अब सब ठीक हो गया था तभी तीन महीने बाद ही प्रबंधकारिणी समिति ने कृष्ण नारायण जी को विद्यालय का सह-प्रधानाध्यापक नियुक्त किया एवं उस निमित्त 15 रुपया मासिक भत्ता दिए जाने का विधान किया गया । प्रबंधकारिणी समिति का यह निर्णय 'मागध' जी की कार्य क्षमता और कुशलता को प्रमाणित करता है । इस निर्णय से जहाँ विद्यार्थियों को खुशी हुई वहीं पुराने शिक्षकों का एक वर्ग दुखी और कृष्ण नारायण जी के प्रति इर्शालु भी हो गये । उन्हें लगा कि उनकी उपेक्षा ही नहीं की गयी वरन महज तेईस वर्ष के किशोर को सह-प्रधानाध्यापक बनाकर उनका उपहास भी किया गया हैं । उसी समय स्कूल को बोर्ड की मंजूरी भी मिली ।

उस समय गोसाईपुर-योगीपुर हाईस्कूल में भी ग्यारहवीं कक्षा तक पढ़ाई की अनुमति थी, पर बोर्ड से मंजूरी नहीं मिली थी । वहाँ भी भूगोल शिक्षक का अभाव था । कृष्ण नारायण जी की ख्याति तब तक पास पड़ोस के विद्यालयों में फैल चुकी थी । गोसाईपुर-योगीपुर हाईस्कूल के लिपिक रामचन्द्र प्रसाद जी को यह कह कर कृष्ण नारायण जी के पास भेजा कि जब तक वे न आये तब तक आप भी न आये । आये तो उन्हें साथ लेकर ही । फलत: रामचन्द्र जी हाईस्कूल में कृष्ण नारायण जी के पास जाकर जम गये, उन्हें सारी बातें सुनाई । वे दसाधिक दिनों तक वहीं डटे रहे । प्रधानाध्यापक श्री गिरिजा बाबू सारी बातों से अवगत थे, अंतत: उन्होंने ही राय दी कि जब

ऐसी बात है तब आप वहाँ चले जाइए । यहाँ की स्थिति मैं संभाल लूँगा । इस प्रकार कृष्ण नारायण जी ने फरवरी, 1958 ई॰ में सरस्वती पुजा के दिन गोसाईपुर-योगीपुर हाईस्कूल में सहायक शिक्षक का कार्यभार संभाला । यहाँ पहले से ही एक सह-प्रधानाध्यापक थे । यद्यपि कृष्ण नारायण जी केवल सहायक शिक्षक बने, तथापि उन्हें आर्थिक दृष्टि से हानि नहीं हुई। विद्यालय के छात्रावास में साठ के आसपास छात्र रहते थे जिनके वे सुपरिटेंडेंट बनाये गये । इस निमित्त आवास और भोजन की सुविधा के अतिरिक्त पच्चीस रूपये मासिक मानदेय दिए जाने का भी विधान किया गया । उक्त विद्यालय के कार्य काल का संस्मरण वही के एक सेवामुक्त शिक्षक रामेश्वर प्रसाद जी ने 'याद को ताज़ा करते हुए' शीर्षक से लिखा था । उनके अनुसार 'कृष्ण नारायण जी दसवीं-ग्यारहवीं कक्षा में मुख्यत: भूगोल, अंग्रेजी और कुछ हिंदी भी पढ़ाते थे । लोकप्रिय और कुशल अध्यापक के साथ–साथ बड़े अनुशासन प्रिय थे ।' उससे जुड़ी दो घटनाओं का भी उन्होंने उल्लेख किया है । उनके स्वाध्याय के बारे में रामेश्वर प्रसाद जी का कथन है कि 'अपनी रुचि से वे प्राय: गद्य की पुस्तके पढ़ते रहते । गद्य में भी निबंधों के प्रति उनकी विशेष रुचि थी । उसके अतिरिक्त ऐतिहासिक, पौराणिक एवं प्राचीन विषयों में भी वे गहरी रुचि लेते थे । बात छिड़ने पर या किसी के द्वारा गलत या भ्रामक जानकारी देने पर वे उसे तुरंत सुधारते हुए सहीं बात कहते । बहुधा लोग नयी बातें जानने, सुनने के लिए भी उन्हें छेड़ते । रुचि के अनुकूल किताबें खरीदने में वे कभी कंजूसी नहीं करते । 'कल्पना'(हैदरबाद), 'ज्योत्स्ना'(पटना), 'पाहन'(पटना) जैसी पत्रिकाएँ भी वे मँगवाते । जब लोग बेकार की बात छेड़ते तो अनेक बार उससे बचने के लिए सबक़ों दूसरी और मोड़ने के लिए निजी पत्रिका का कोई अंश ज़ोर-ज़ोर से पढ़ना शुरू करते, उसकी प्रशंसा करते और इस प्रकार बातचीत का प्रसंग बदल जाता या लोग कमरे से उठ कर बाहर चले जाते ।

सन 1960-1961 ई॰ का दौर उनके लिए पारिवारिक अशांति का था । गाँव के ही एक व्यक्ति विशेष को ऐसा लग रहा था कि यह संयुक्त परिवार क्यों है ? वह इस परिवार को तोड़ने के लिए अपनी ओर से कोई कसर शेष नहीं छोड़ना चाहता था । इसी क्रम में कृष्ण नारायण की पत्नी की पिटाई करते हुए घर से बाहर निकालकर उनकी चाची ने गोसाईपुर तक, जहाँ कृष्ण नारायण

जी उच्च विद्यालय में अध्यापन कर रहे थे, पहुँचा दी । स्वाभाविक आक्रोश के साथ घटना का आंकलन हेतु दो दिनों के बाद कृष्ण नारायण जी घर आये । आलोचना से अनेक प्रगति आयीं । अपने पुत्र के मनोभाव को देखकर पिता लक्ष्मीनारायण जी ने कहा 'दूध कट जाने पर दही नहीं बनाया जा सकता परंतु लोकप्रिय मिठाई छेना जरूर बनाया जा सकता हैं ।' इस लोकोक्ति से संवेदनशील कृष्ण नारायण जी के अंदर आया हुआ कुत्सित तूफान हमेशा के लिए शांत हो गया और उस आदमी की घर तोड़ नीति सुबह का चिराग बनकर रह गयी । इनके घर का माहौल शांत हो गया ।

समय बीतता गया । एकबार पुनः उन्हें ऐसा लगा कि अब संयुक्त परिवार टूट जायेगा, पर उन्होंने अपनी सहनशीलता से सब संभाल लिया । इस सहनशीलता तथा सामाजिकता के प्रेरणा स्रोत रहे है –इनके पिता । यहीं कारण है कि कृष्ण नारायण जी में समाज, परिवार के प्रति समर्पण और प्यार की भावना आज तक जीवित है ।

उन्हीं दिनों सरकार की ओर से बिहार में हाईस्कूल को हायर सेकेन्डरी में प्रोन्नत करने की योजना बनी । एम.ए. उपाधिधारी शिक्षकों की नियुक्ति की बात चली । यद्यपि बी.ए.(आनर्स) और एम.ए. का वेतनमान एक ही रखा गया और कृष्ण नारायण जी उस समय बी.ए.(आनर्स) थे, तथापि उन्हें लगा कि कोई एम.ए. उपाधिधारी नवनियुक्त होकर आयेगा और धौस जमायेगा, अतएव स्वयं भी एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेनी चाहिए । घर में अशांत वातावरण के कारण वे 1960-1961 ई॰ में परीक्षा नहीं दे सकें । प्राइवेट परीक्षार्थी के रूप में 1962 ई. में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से उन्होंने 'हिंदी लिटरेचर' में एम.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी से सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करते हुए उत्तीर्ण की । इस निमित्त काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की ओर से उन्हें पुरस्कृत भी किया गया ।

2.1.3 डीग्री कॉलेज में हिंदी व्यख्याता के रूप में कर्मजीवन :

बिहार विश्वविद्यालय सेवा आयोग की अनुशंसा पर अगस्त, 1962 ई. से कृष्णनारायण जी गोपालगंज कॉलेज में हिंदी व्याख्याता के रूप में बी.ए. (आनर्स) तक अध्यापन से जुड़े । वहाँ कार्यभार ग्रहण करते हुए अभी एकाध सप्ताह ही हुआ था । उस समय तक इनका नाम सबके ध्यान में नहीं आया था । पास के एक हाईस्कूल के अध्यापक उनसे मिलने के लिए आये । अध्यापक कक्ष में उस समय अंग्रेजी के अध्यापक यू. एन. मिश्र थे । उन्होंने ही कहा, ये मगध से आये है, नाम ध्यान में नहीं रहने पर आप इन्हें 'मागध'(मगध वासी) भी कह सकते हैं । तभी कृष्ण नारायण प्रसाद जी भी वहाँ आ गये । उन्हें सारी बातें मालूम हुई । उसी दिन से कृष्ण नारायण प्रसाद जी 'मागध' कहे जाने लगे । 'मागध' शब्द उपाधि रूप में तभी से उनके नाम के साथ सदा के लिए जुड़ गया । अध्यापन के साथ-साथ 'मागध' जी का स्वाध्याय भी चलता रहा । गोपालगंज में आयोजित होनेवाली साहित्यिक-सांस्कृतिक गोष्ठियों में भी वे सदा भाग लेते । डी. ए. भी. हाईस्कूल के प्रांगण में आयोजित वैसी ही एक गोष्ठी में 'उपनिषद' शीर्षक से उनके द्वारा पठित आलेख की काफ़ी चर्चा रही । वहाँ के सेवा काल में ही 'मागध' जी ने संस्कृत में 'रत्न' (सन 1966 ई॰) की परीक्षा उत्तीर्ण की और 'हिंदी बाबनी काव्य' विषय पर उपाधिपरक शोध प्रबंध-प्रस्तुत कर पीएच.डी. की उपाधि (सन 1968 ई॰) भी प्राप्त की । पीएच. डी. उपाधि पानेवाले उस कॉलेज में वे पहले व्याख्याता थे । वहाँ रहते हुए ही 'मागध' जी की चार महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुई । 'हिन्दुत्व नवनीत' नामक एक लघु पुस्तिका का भी संकलन किया ।

शोध प्रबंध लेखन के क्रम में हिंदीतर आधुनिक भारतीय भाषाओं में रचित व्यक्तियों की रचनाओं को प्रकाशित करने के लिए 'मागध' जी ने विभिन्न हिंदीतर विद्वानों को पत्र लिखे । हिंदी विषयक रचना के लिए उन्होंने प्रभाकर माचवे जी को पत्र लिखा । माचवे जी ने उत्तर तो दिया, साथ ही यह चेतावनी दी कि आलेख हिंदी में नहीं, अँग्रेजी में लिखा करें । 'मागध' जी को यह आदेश अच्छा नहीं लगा । उन्होंने प्रतिवाद करते हुए लिखा कि " मैं ने किसी हिंदीतर साहित्यकार को नहीं, हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रभाकर माचवे को हिंदी में पत्र लिखा था । यह शर्म की बात है कि आप एक ओर हिंदी साहित्यकार है, हिंदी की रोटी खाते हैं और दूसरी ओर हिंदी

में पत्र लिखने तक को माना करते है । यदि आप बुरा न माने तो आपका यह पत्र पत्रिकाओं आदि में प्रचारित किया जाए ।"[3] इस पर माचवे जी ने खेद प्रकट करते हुए वैसा नहीं करने का आग्रह किया और 'मागध' जी ने वैसा नहीं किया । उनका वह पत्र 'हिंदी बावनी काव्य' शोध प्रबंध के परिशिष्ट में टंकित है ।

कुशल अध्यापक के अतिरिक्त किसी भी विषय की गहरी पकड़, विश्लेषण क्षमता वक्तृत्व कला, विद्वता आदि की दृष्टि से 'मागध' जी प्रख्यात हो चुके थे । शायद कूछ लोगों को उनकी ख्याति से जलन होती हो, तभी वे उनकी परीक्षा लेने के उपाय और समय खोजते रहते । उस परीक्षा में भी 'मागध' जी खरे उतरे । इससे उनकी लोकप्रियता और अधिक बढ़ गई । वह घटना इस प्रकार की थी -

गोपालगंज कॉलेज में मिथिलांचल के व्यख्याताओं ने प्राचार्य राजेन्द्र प्रसाद सिंह (जो मिथिला के ही थे) जी के संरक्षण में 1965 ई॰ में विद्यापति पर्व का आयोजन किया । उसमें बाहर से आमंत्रित विद्वान और कलाकार भी आये थे । कॉलेज प्रांगण में शामियाना तना था । जाड़े की रात थी, सर्दी से बचने के लिए सबने पूरी तैयारी कर रखी थी । शामियाना श्रोता मंडली से भरा था । किनारे में कुछ बेंच लगे थे । श्रोता के रूप में उस पर कॉलेज के शिक्षक बैठे थे । कार्यक्रम चल रहा था, भाषण और गीत, दोनों बराबरी से चल रहे थे । दो विद्वानों के भाषण हो चुके थे । आकाशवाणी के कलाकार गीत प्रस्तुत कर रहे थे । तभी मंच से सभाध्यक्ष ने वक्ता के रूप में 'मागध' जी को मंच पर आमंत्रित किया । श्रोता मंडली में बैठे 'मागध' जी को तो पहले विश्वास ही नहीं हुआ, पर पुन: पुनः पुकारे जाने पर वे मंच पर गये । सभाध्यक्ष ने 'मागध' जी को श्रोता मंडली के समक्ष उपस्थित कर एक और वाक्य यह भी कहा कि दो पूर्व वक्ताओं द्वारा व्यक्त किये गये विचारों को पुनरुक्त न करते हुए 'मागध' जी कुछ नया ही कहेंगे । मंच से ऐसे उद्घोष को सुन 'मागध' जी को कुछ साजिश की बू आयी । उनका चेहरा क्रोध से भर गया । जाड़े की सर्द रात में भी उनके चेहरे पर पसीने की बुँदे छलक आयीं । दो मिनट तक एकदम चुप रहे, अपने को थोड़ा

संभालते हुए पहले उन्होंने सभाध्यक्ष की खबर ली । उन्होंने जो कहा उसका सार इतना भर था कि यदि मुझे इस मंच में भाषण देना था तो आयोजकों द्वारा पहले सूचना दी जानी चाहिए थी । पुन: यह प्रतिबंध लगाना कि पूर्व वक्ताओं की बातें न दुहराई जाए, ये दोनों बातें ऐसा सोचने को बाध्य करती है कि मुझे परीक्षा के लिए यहाँ बुलाया गया है । यदि यह सच है तो आज उनके भ्रम को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया जायेगा पूर्व वक्ताओं को लक्ष्य करते हुए उन्होंने कहा कि मैथिल विद्वान विद्यापति के कद को छोटा और महत्त्व को कम किया जा रहा है । वे उन्हें मात्र मैथली का कवि मानना चाहते है । जबकि हिंदी के विद्वान, उन्हें अधिक महान साहित्यकार स्वीकार करते है । आपलोगों ने पदावली के आधार पर उन्हें केवल भक्ति और शृंगार का श्रेष्ट कवि स्वीकार किया है । प्राय: ऐसा ही और लोग भी कहते है, पर कवि विद्यापति की न तो यही शक्ति है और न सीमा ही । तदन्तर 'मागध' जी ने मुख्यत: 'कीर्तिलता' को केंद्र में रखकर उनके द्वारा वर्णित जौनपुर नगर (वहाँ के हार-बाज़ार), वहाँ तुर्कों द्वारा हिंदुओं पर किये जानेवाले अत्याचारों आदि का वर्णन किया । व्याख्यान के क्रम में 'कीर्तिलता' के द्वितीय पल्लव की अधिकांश पंक्तियाँ तो उन्होंने उद्धृत की ही, अन्य पल्लवों से भी उदाहरण प्रस्तुत कर उन्हें तदयुगीन इतिहासकार घोषित करते हुए यथार्थवादी कवि के रूप में स्थापित किया । अपनी मान्यताओं की स्थापना के लिए 'पदावली' से भी कुछ बातें रखी –'अल्पवयस्क नायिका और तरुण कान्ह नायक की केलि का सोल्लास अंकन तो विद्यापति ने किया है, पर प्रियतम को गोद में लेकर बाज़ार जानेवाली नायिका से बाज़ार के लोग पूछते है कि यह तुम्हारा देवर है या भाई, तब नायिका का यह उत्तर 'पुरुष लिरवल छलू बालमु हमार' सुनकर उसका गहरी साँसे लेना देख पाठक उल्लासित नहीं होता, सहानुभूतिवश 'धीरज धरह न मिलात मुरारी' कहकर उसे परपुरुष से मिलाने का आश्वासन देता है । इन व्यक्तियों में तत्कालीन मैथिल समाज का यथार्थ जीवन ही मुखर हुआ है ।' इसप्रकार विद्यापति को उन्होंने श्रेष्ठ सिद्ध किया । 'मागध' जी का व्याख्यान घंटों लंबा खींचा और श्रोतामंडली मंत्र मुग्ध हो सुनती रही । विद्यापति के संबंध में इतना नया उन्हें पहली बार सुनने को मिला था । उनके भाषण के पश्चात कलाकारों द्वारा गीत आदि तो प्रस्तुत किये गये,

पर भाषण और किसी विद्वान का नहीं हुआ । उस भाषण ने 'मागध' जी की ख्याति में और भी चार चाँद लगा दिया ।

स्कूली दिनों से ही 'मागध' जी राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की शाखाओं में जाया करते थे । गोपालगंज में 'मागध' जी ने आने पर पाया कि वहाँ राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की कोई शाखा नहीं हैं । अपनी कड़ी साधना और श्रम के बल पर गोपालगंज में उन्होंने संघ की शाखा शुरू की जिसमें उनके रहते समय तक ही संख्यात्मक और गुणात्मक विस्तार हुआ । झारखंड राज्य के वर्तमान सेवा प्रमुख श्री गुरुशरण प्रसाद जी का प्रचारक जीवन गोपालगंज से ही शुरू हुआ था । उन दिनों 'मागध' जी का निवास भी वहाँ का संघ कार्यालय ही था ।

सन 1966 ई. में पटना से प्रकाशित होनेवाले दैनिक 'आर्यवर्त' में एक बहस छिड़ी थी – 'हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयता है' । उसमें 'पाठकों की दृष्टि' एक कॉलम था जिसमें लोगों के विचार छापे जाते थे । डॉ॰ 'मागध' जी ने भी उसमें अपने विचार 25 सितंबर 1966 ई. को प्रकाशित कराया था । उससे एक पैराग्राफ अग्रांकित है । 'हिन्दुत्व और राष्ट्रीयता को लेकर बड़ी खींचा-तानी हुई है । इस क्रम में दो प्रकार के विचार आयें हैं – (i) कोरे आदर्शवादी विचार (ii) आदर्शोन्मुख यथार्थवादी विचार । हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयता है अथवा हिन्दू राष्ट्रीय जैसे वाक्यों को अस्वीकार करना युगसत्य से मुख मोड़ना है । भारतवर्ष एक हिन्दू राष्ट्र है'- संपादकीय का यह वाक्य कटु यथार्थ है जिसे अधिकांश बुद्धिजीवी और बोधप्रिय राजनीतिज्ञ (हृदय से स्वीकार करने पर भी खुलकर स्वीकार करने में अक्षम हैं । इसका एक मात्र कारण है मानसिक पराधीनता और सत्याभिव्यक्ति का अभाव । पंचमांगियों के स्वर से स्वर मिलानेवाले तथाकथित राजनेता (?) तो 'हिन्दू' शब्द से इतना घबराते है कि वे स्वयं को भी हिन्दू कहना नहीं चाहते । उन्हें हिन्दू अथवा हिन्दुत्व शब्द सांप्रदायिक लगता है, पर वस्तुत: वैसा है नहीं । हिन्दू शब्द किसी संप्रदाय का वाचक नहीं, अपने विशुद्ध रूप में हिन्दुत्व, मानवता अथवा 'मानव एकात्मवाद' का जीवन दर्शन है । वैष्णव, शाक्त, शैव, सूर्योपासक, जड़ोपासक, सिक्ख, बौद्ध, जैन आदि विविध संप्रदाय इसी के अंग है । विभिन्न

अनुकूल-प्रतिकूल विचारों का सामंजस्य यह अपने में करता आया है । इस राष्ट्र को अपनी जन्मभूमि, मातृभूमि, पितृभूमि, कर्मभूमि, धर्मभूमि, पुण्यभूमि, मोक्षभूमि माननेवाला प्रत्येक घटक ही हिन्दू है । हिन्दू शब्द के उच्चारण से ही इस राष्ट्र का सम्पूर्ण अतीत झलक उठता है ।'

2.1.4 गौहाटी विश्वविद्यालय में कर्म जीवन

सन 1970 ई॰ में गौहाटी विश्वविद्यालय में स्नातोकोत्तर हिंदी विभाग खुला । पहली बार जिन दो अध्यापकों की नियुक्ति हुई उनमें एक थे 'मागध' जी और दूसरे थे डॉ॰ हीरलाल तिवारी, जो प्रागज्योतिष कॉलेज के व्याख्याता थे । अक्टूबर 1970 ई॰ में 'मागध' जी ने ग्रंथ विभाग में कार्यभार ग्रहण किया । प्रारम्भिक कई महीने प्राय: शांतिपूर्ण बीते, पर विभिन्न गोष्ठियों में अलग-अलग मंचों से लोगों ने उन्हें ज्यों-ज्यों सुना, त्यों-त्यों मंचों पर पहले से जमे रहनेवाले लोगों की नज़र में वे किरकिरी बनते गये । 'मागध' जी उन्हें बाधक और प्रतिद्वंद्वि प्रतीत होने लगे । इस प्रकार 'मागध' जी के विरोध में चार व्यक्तियों का एक विरोधी गुट-सा बन गया । उस गुट ने 'मागध' जी का विरोध करने के लिए तरह-तरह के उपाय किये, गुट अपनाये, पर 'मागध' जी अपने पथ से विचलित नहीं हुए ।

गौहाटी विश्वविद्यालय में कार्यरत डॉ॰ 'मागध' का कक्षा के बाहर सार्वजनिक व्याख्यान पहली बार गौहाटी विश्वविद्यालय छात्र-संघ द्वारा आयोजित सभा में हुआ । उक्त अवसर पर विश्वविद्यालय के कई प्रोफेसर भी उपस्थित थे । डॉ॰ 'मागध' का व्याख्यान हिंदी में हुआ था । वह व्याख्यान कितना प्रभावोत्पादक था, इसका अनुमान मात्र इसी से किया जा सकता है कि उस एक व्याख्यान को सुनने के पश्चात ही साइंस के विद्यार्थी रहे भूपेन्द्र रायचौधुरी का ऐसा परिवर्तन हुआ कि उन्होंने नये सिरे से हिंदी विषय लेकर बी॰ए॰ की परीक्षा उत्तीर्ण की और हिंदी की परीक्षा प्राइवेट छात्र के रूप में दी, हिंदी में शोध किया और गौहाटी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर और अध्यक्ष बने । उन्होंने कई अवसरों पर इस कथन का खुलासा भी किया है ।

गुवाहाटी में रहते हुए अभी कुछ ही दिन बीते थे कि संदिकै गर्ल्स कॉलेज के अँग्रेजी के विभागाध्यक्ष जे. बी. त्रिपाठी और केंद्रीय विद्यालय के एक शिक्षक लाल साहब ने डॉ॰ 'मागध' को असमिया सीखने और असमिया साहित्य अध्ययन करने की सलाह दी । बातों ही बातों में उन्होंने बताया कि असमिया भाषियों की यह शिकायत रहती है और शिकायत बाजिब भी है कि ग्रंथ भाषी असम में आकर नौकरी करते है, असमिया भाषियों को ग्रंथ सीखने का उपदेश देते है, पर स्वयं असमिया सीखने में रुचि नहीं लेते है । इससे हिंदी शिक्षकों के प्रति असमिया भाषियों में वह आदर भाव नहीं है, जो होना चाहिए । डॉ॰ 'मागध' को उनके कथन में यथार्थ का पूट लगा । अस्तु, उन्होंने तभी असमिया भाषा सीखने और असमिया साहित्य का अध्ययन करने का निश्चय किया । इस प्रकार डॉ॰ 'मागध' के साहित्यिक जीवन में यह दूसरा मोड़ आया । इसके पूर्व उनका लेखन ग्रंथ साहित्य तक सीमित था, जो अब असमिया साहित्य-संस्कृति की ओर मुड़ा ।

असमिया साहित्य विषयक डॉ॰ 'मागध' का पहला लेख 'शंकरदेव के मूल्यांकन की समस्या' सन 1971 ई॰ में पुणे से प्रकाशित 'राष्ट्रवाणी' के शंकरदेव अंक में छपा । सन 1972 ई॰ में श्री बापचन्द्र महंत ने उसे असमिया में अनूदित कर असमिया पत्रिका 'नीलाचल' के शारदीय अंक में प्रकाशित किया । उसी लेख ने असमिया पाठकों, लेखकों, विद्वानों आदि को डॉ॰ 'मागध' के लेखन की ओर आकृष्ट किया ।

तदुपरान्त हिंदी कवि सूरदास के कृष्ण भक्ति काव्य के साथ शंकरदेव के कृष्ण भक्ति काव्य का तुलनात्मक अध्ययन कर उपाधिपरक शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया जिस पर सन 1973 ई॰ में डॉ॰ 'मागध' को डी॰ लिट॰ की उपाधि मिली । फिर तो मध्यकालीन असमिया भाषा साहित्य, संस्कृति आदि से सम्बद्ध विषयों पर डॉ॰ 'मागध' निरंतर लिखते रहे । एतद्विषयक उनकी कई पुस्तकें पुरस्कृत भी हुई । असमिया साहित्य-संस्कृति-कला को हिंदी माध्यम से प्रचारित करने के लिए उन्होंने 'प्राच्य भारती' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी सन 1974 ई॰ से शुरू किया, जिसे सन 1975 ई॰ की जुलाई में आपदकाल के दौरान बंद कर देना पड़ा ।

डॉ॰ 'मागध' असमिया पढ़ने-लिखने में जुट गये थे । इसका अनुमान पहली बार सन 1971 ई॰ में शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, उत्तर गुवाहाटी, में आयोजित तुलसी-जयंती के अवसर पर हुआ । कई लोगों के भाषण हुए । सबके अंत में 'मागध' जी ने अपने भाषण में तुलसीदास और शंकरदेव के वर्षा और शरद वर्णन पर विचार करते हुए दोनों में साम्य का कारण स्रोत की एकता को स्पष्ट किया । डॉ॰ 'मागध' को यह पता नहीं था कि उनका पूरा भाषण 'टेप' किया जा रहा है । बाद में शंकरदेव वाले अंश को मूल से मिलाकर देखा गया । इसका पता बाद में डॉ॰ 'मागध' को भी चला । इससे विरोधियों को चौंकना पड़ा, क्यों कि उनकी बातें एकदम ठीक थी ।

सन 1974 ई॰ में माधवदेव के नाटकों को देवनागरी में लिप्यंतरण कर नाटकों से संबंधित छोटी भूमिका के साथ उन्हें 'माधवदेव के नाटक' नाम से प्रकाशित कराया । डॉ॰ 'मागध' के हर कार्य की प्रशंसा हिंदी और असमिया के विद्वानों द्वारा की गयी । तत्पश्चात विरोध का स्वर उग्र हो उठा । लोकनाथ भराली ने 'राष्ट्रसेवक' के मई 1976 वाले अंक में उसकी समीक्षा के नाम पर विष वमन किया । पुन: 'राष्ट्रसेवक' के ही जून 1976 अंक में धुरंधर शर्मा के छद्म नाम से हीरालाल तिवारी ने एक लेख प्रकाशित कराया । उनमें इतनी भी हिम्मत नहीं थी कि अपने नाम से ही कुछ लिखे । डॉ॰ 'मागध' जी पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा । श्री नवरून वर्मा जी (स्वर्गीय) ने उन लेखों के प्रतिवाद स्वरूप लेख लिखे, डॉ॰ 'मागध' को उन्होंने लेख दिखाया भी पर 'मागध' जी ने उन्हें प्रकाशित होने से यह कहकर रुकवा दिया कि वे यहीं तो चाहते थे कि मैं वाद-विवाद में उलझ जाऊ और कुछ न करूँ । वे दोनों लेख 'मागध' जी के पास आज भी हैं । डॉ॰ 'मागध' जी ने कहा कि इसका उत्तर मुझे देने की अवश्यकता नहीं, स्वयं असम के विद्वान ही इसका उत्तर देंगे और वहीं हुआ । गौहाटी में होने वाली छोटी-बड़ी साहित्यिक गोष्ठियों में डॉ॰ सत्येंद्र नाथ शर्मा, डॉ॰ महेश्वर नेओग, डॉ॰ वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य जैसी हस्तियों ने उनका मुह बंद किया ।

जिस प्रकार का विरोध गुवाहाटी में 'मागध' जी का हो रहा था, संभवत: कुबेरनाथ राय जी के प्रति वैसा ही विरोध पूर्वी उत्तरप्रदेश और गोरखपुर विश्वविद्यालय के बुद्धिजीवी कर रहे थे । 'प्राच्यभारती' में प्रकाशनार्थ 'जीवहंस की रात्रि प्रार्थना' शीर्षक निबंध के साथ 10 फरवरी, 1975 ई. के पत्र से यह तथ्य स्पष्ट होता है । यहाँ पत्र के मात्र आरंभ और अंत के कुछ वाक्य रखे जा रहे हैं जिनका संबंध डॉ॰ 'मागध' से है । वे लिखते है – 'आपकी स्थिति समझता हूँ । इस द्वन्द्व में हमारे जैसे लोगों की स्थिति विचित्र हो जाती है जो दोनों पक्षों के प्रति ममता से ग्रस्त हैं । परंतु ग्रंथ जगत में अकारण हिंसा करने की परंपरा चल पड़ी थी ।' पुन: अंत में कहते है – 'मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि आरोप ओढ़ने की चीज़ नहीं बिछाने की चीज़ है । बिछाकर सो जाइए । इन बातों पर चिंता करने की जरूरत नहीं । आपसे मैं यहीं प्रार्थना करूंगा कि आप 'पंजिटीब' जो कुछ भी करते जा रहे है, वह प्रशंसा के योग्य है ।' पत्र समाप्त करने के पश्चात पुन: (बदली हुई स्याही में, संभवत: कुछ समय बाद) उन्होंने लिखा – "हमारा लक्ष्य होना चाहिए – भारत की अस्मिता की रक्षा करते हुए एक जातिहीन-वर्गहीन समाज की स्थापना आपका प्रयत्न इसी दिशा में है । इसी से मैं आपको प्रशंसा का पात्र मानता हूँ ।"[४] कहना न होगा कि डॉ॰ 'मागध' भी आरोपों को बिछाते ही रहे एवं उनका लेखन भारतीय संस्कृति को समग्रता में प्रस्तुत करने की ओर अग्रसर होता रहा ।

सन 1976 ई॰ पंजाबी विश्वववविद्यालय, पटियाला के धर्म और संस्कृति विभाग द्वारा डॉ॰ 'मागध' प्रणीत 'शंकरदेव: साहित्यकार और विचारक' ग्रंथ प्रकाशित हुआ । उसके प्रकाशन पूर्व ही विरोधियों को भनक लग चुकी थी । उन लोगों ने, जिनमें प्रमुख नाम लोकनाथ भराली का ही था, पंजाब के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम महेंद्र मोहन चौधुरी जी से उसका प्रकाशन रुकवाने के लिए अनुरोध किया, पर महामहिम ने उनकी बात नहीं सुनी । श्रीमंत शंकरदेव की 528 वीं जन्मतिथि के अवसर पर उक्त पुस्तक का लोकार्पण पंजाब और हरियाणा के मुख्य न्यायाधीश द्वारा किया गया । कार्यक्रम की समाप्ति के पश्चात सम्मिलित भोजन हुआ । तदन्तर राज्यपाल जी ने 'मागध' जी से कहा कि "अपोनार विरुद्धे मोई इमान डांगोर (हाथ से संकेत करते हुए) चिठिखन पाइछिलो" । 'मागध' जी ने वह चिट्ठी देखने की इच्छा प्रकट की किन्तु राज्यपाल जी ने

कहा कि उसकी कोई आवश्यकता नहीं है । 'मैंने स्वयं ही उन्हें करारा जवाब लिख दिया है ।' वहीं पुस्तक सन 1978 ई॰ में उत्तर प्रदेश ग्रंथ संस्थान द्वारा पुरस्कृत हुई ।

विरोधियों में चार तो निश्चित थे ही, हो सकता है एकाध और भी हो । इस अभियान में दो हिंदी भाषी ग्रंथ के व्याख्याता ही थे, किन्तु किसी में न तो सामने कुछ कहने की हिम्मत थी और न अपने नाम से लिखने की । प्राय: सबकी ओर से लिखने का कार्य संभालते थे – लोकनाथ भराली । 'असम बातोरी' नामक असमिया दैनिक पत्र में लोकनाथ भराली ने लगातार तीन दिनों तक 'मागध' जी के विरोध में पूरा एक-एक पृष्ठ लिखा । सारांश इतना भर था कि गौहाटी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग से डॉ॰ 'मागध' की सेवा समाप्त कर दी जानी चाहिए । वे असमिया को हिंदी कहकर हिंदी संसार की श्रीवृद्धि तो करते है, पर इससे असमिया साहित्य-संस्कृति को अपार क्षति हो रही थी । ऐसे लेखन के बावजूद 'मागध' जी चट्टान की तरह अपने स्वाध्याय में डटे रहे । अपनी पुस्तक की भूमिकाओं में विरोधियों पर व्यंग करते हुए उनका प्रतिवाद भी करते । 'माधवदेव: व्यक्तित्व और कृतित्व' की भूमिका (एकदा गौहाटी विश्वविद्यालय) में उन्होंने लिखा "सिलसिला अभी बन भी नहीं पाया था कि शनीचरी दृष्टि पड़ गयी । अपने 'धुरंधर' मित्रों ने करामाती गुब्बारे फुलाने शुरू किए । शायद उन्हें अहसास नहीं था कि अनावश्यक हवा भरी जाने पर गुब्बारे स्वयं ही फुट जाते हैं । यह व्यथा कथा है लंबी, सुनाने की इच्छा भी होती है, पर तभी स्मरण हो आती है,'अज्ञेय की पंक्तियाँ'- 'क्या जरूरी है दिखाना तुम्हें वह जो दर्द / मेरे पास है । अस्तु फिर कभी । गुब्बारे यदा-कदा आज भी फुलाये-उड़ाये जाते हैं; पर वे स्वयं ही नष्ट होते है ।"[9] श्री महेंद्र मोहन चौधुरी जी ने माधवदेव पर पुस्तक लिखने की प्रेरणा देते हुए कहा था कि सतकार्य में तो कष्ट झेलना ही पड़ता है । उनका यह कथन भी 'मागध' जी के लिए 'पेनवाम' का काम करता था ।

गुवाहाटी के उजान बाज़ार स्थित 'मागध' जी के निवास पर संध्या समय विद्वानों की चौकड़ी जमती जिसमें बेहद व्यंग करनेवाले जे. बी. त्रिपाठी, ठहाकों से दीवार तक को गुंजा

देनेवाले धर्मदेव तिवारी, प्राय: शांत रहनेवाले अजित दास और चुटकी लेने में माहिर सुरेन्द्र महंत तो सदा होते ही, कभी-कभार प्रिन्सिपल परेशचन्द्र देव शर्मा, डॉ॰ वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य या कोई और भी जुड़ जाते । शब्दों से खेलनेवाले, खेल-खेल में शब्दों की (बेतुकी भी) व्युत्पत्ति कर ठहाके लगाने वाले, परेश जी और धर्मदेव जी, जब दोनों होते तो यह निर्णय करना मुश्किल होता है कि किनके ठहाके अधिक धमाकेदार हैं । अनेक बार पोस्टल विभाग में कार्यरत कई इंजीनियर भी प्राय: आ जाते । चाय की चुसकियाँ लेते, घंटों ताश खेलते या गप लड़ाते । अनेक बार साहित्यिक चर्चाएँ छिड़ जाती तब इलियट से लेकर वादलेयर तक की चटनी बनायी जाती या शंकरदेव और तुलसीदास, माधवदेव और सूरदास, भारतेन्दु और बेजबरुवा पर बहसें छिड़ जाती । उन्हीं बहसों, बैठकियों में 'मागध' जी के विरुद्ध चल रही साजिश का भी पता लग जाता । किन्तु 'मागध' जी इन सबसे निष्प्रभावी बने रहते । 'मागध' जी के उस निष्प्रभ रूप को ध्यान में रख कर ही श्री मती शकुंतला शुक्ल ने एक तस्वीर भी बनायी थी, जिसमें एक पेड़ को झंझावटों में खड़ा दिखाया गया था और उसी के नीचे स्वरचित कविता की दो पंक्तियाँ भी लिखी थी । वह तस्वीर 'मागध' जी के कमरे में उन्होंने स्वयं ही लगायी थी ।

विरोध की चरम सीमा ऐसी हुई कि असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा प्रकाशित की जानेवाली डॉ॰ 'मागध' की पुस्तक 'ब्रजावली पद्य साहित्य' की पाण्डुलिपि को प्रेस से उड़ा लिया गया । तबतक उसके केवल 128 पृष्ठ ही मुद्रित हुए थे । कई मित्रों ने 'मागध' जी को इस निमित्त परिषद के प्रधान सचिव और साहित्य सचिव पर मुकदमा करने की राय दी, पर उन्होंने वैसा नहीं किया । उनका एक ही उत्तर था – मुकदमा किसके विरुद्ध? हिंदी प्रचारित करने वाली मातृसंस्थान के विरुद्ध? कदापि नहीं, इससे मेरी वैयक्तिक क्षति अवश्य हुई है, पर मैं हिंदी-संस्था के विरुद्ध कुछ नहीं करूँगा । इससे बदनामी संस्था की नहीं, शायद मेरी ही होगी । सच्चाई को नहीं समझते हुए लोग यहीं कहेंगे कि एक हिंदी भाषी ने ही असम में हिंदी का प्रचार करने वाली संस्था का विरोध किया और 'मागध' जी ने उस विरोध विष का भी पान कर लिया ।

'मागध' जी के भाषण बड़े प्रभावोत्पादक थे, इस ओर पहले भी संकेत किया जा चुका है । इसका एक और उदाहरण मानस-चतुर्दशी वर्ष के समापन पर गुवाहाटी के जिला पुस्तकालय सभागार में आयोजित समारोह में भी मिला । 'मागध' जी के शुभ चिंतक बहुधा इस निमित्त उन्हें तैयारी करने को कहते रहे । 'मागध'जी ने उन्हें हिसाब लगाकर समझाया कि सभा दो-ढाई घंटों से अधिक तो चलेगी नहीं, उसमें मुख्यमंत्री, शिक्षामंत्री, विशिष्ट वक्ताओं के भाषण तो होंगे ही, कलाकारों द्वारा गीत-नाट आदि भी प्रस्तुत किए जायेंगे । अंत: बोलने के लिए दस मिनट से अधिक समय तो मिलेगा नहीं । फिर वह सभा विद्वानों की तो होगी नहीं, श्रोतामंडली में सब प्रकार के लोग होंगे । बीस वर्षों से अध्यापन करते रहने के बाबजुद यदि दस मिनट भी मैं अवसरोचित कथन नहीं कर सका तो..... । डॉ॰ 'मागध' का भाषण मुश्किल से दस मिनट का हुआ होगा, पर उनका भाषण सबसे अलग, सबसे भिन्न और सर्वोत्तम, सबके हृदय को स्पर्श करनेवाला था । विषय को उपस्थित जनसमूह के अनुकूल बनाकर उपस्थित करना उनकी सर्वोपरि विशेषता थी । 'मागध' जी का भाषण समाप्त होने के पश्चात सभागार में दो मिनट तक लगातार तालियाँ बजती रहीं । पूर्व का कहा-सहा सब समाप्त हो गया, केवल रह गया डॉ॰ 'मागध' का भाषण, तभी सभा के अध्यक्ष और असम के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री शरतचंद्र सिंहा ने अपने भाषण में डॉ॰ 'मागध' के नाम का कई बार उल्लेख करते हुए उनके द्वारा कहीं गयी बातों पर अमल करने की राय दी ।

गुवाहाटी में हिंदुस्थानी एवं मारवाड़ी समाज द्वारा आयोजित किए जानेवाले साहित्यिक-सांस्कृतिक आयोजनों में डॉ॰ 'मागध' की उपस्थिति सदा अपरिहार्य होती । फाँसी बाज़ार में आयोजित होनेवाली गीता जयंती के अवसर पर पठित उनका आलेख सर्वाधिक स्मरणीय और महत्त्व का माना गया । जैनियों के पयुर्षण पर्व पर नगाँव में, हनुमान जयंती के अवसर पर गोलाघाट में और श्री कृष्ण जन्माष्टमी पर डिमापुर में हुए उनके भाषण आज भी यदा-कदा चर्चा के विषय बनते हैं । श्रीमंत शंकरदेव और महापुरुष माधवदेव की तिथियों पर तो उनके भाषण होते ही रहते थे । असमिया साहित्य और संस्कृति से जुड़े एवं तत्संबंधी लेखन के लिए शुवालकुची की

धर्मलोचनी सभा और असम साहित्य सभा की बरपेटा शाखा साहित्य सभा द्वारा इस निमित्त वे सम्मानित भी किए गए ।

गौहाटी विश्वविद्यालय में कार्यकाल के समय डॉ॰ 'मागध' राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्यों से भी सम्बद्ध रहे । आपदकाल में उनके निवास पर चौबीसों घंटे खुफिया पुलिस की पहरेदारी रहती थी । उस समय उनपर असम में शिवाजी राज्यारोहण के त्रिशताब्दी समारोह आयोजित किये जाने का दायित्व था । पर्याप्त चौकसी के बावजूद डॉ॰ 'मागध' जी की गिरफ्तारी नहीं हो सकी थी ।

गौहाटी विश्वविद्यालय के सेवा काल में डॉ॰ 'मागध' आंचलिक, प्रांतीय, राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय स्तर की गोष्ठियों और सभाओं में भाग लिया करते थे । असम में विदेशी बहिष्कार आंदोलन के बारे में केंद्रीय सरकार के तंत्र द्वारा जब गलत प्रचार किया जा रहा था, तब गौहाटी विश्वविद्यालय शिक्षक संघ ने उसका प्रत्याख्यान कर सही जानकारी देने के लिए जिन दो शिक्षकों को दूसरे राज्यों में भेजा, उनमें एक 'मागध' जी थे । उस निमित्त 'मागध' जी ने सितंबर, 1983 ई॰ में तीन सप्ताहों तक लगातार मध्यप्रदेश का दौरा किया एवं वहाँ के प्राय: सभी प्रसिद्ध नगरों में अपने सार्वजनिक व्याख्यानों, गणमान्य व्यक्तियों और बुद्धिजीवियों की बैठकों, पत्राचार-वार्ताओं द्वारा उस आंदोलन के बारे में सही जानकारी दी । निश्चय ही उस महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय दायित्व का उन्होंने कुशल पूर्वक निर्वाह किया । इसकी साक्षी मध्यप्रदेश से प्रकाशित होने वाली दैनिक पत्रों में प्रकाशित तदविषयक समाचार है ।[६]

किसी बात का एक बार निश्चय कर लेने पर डॉ॰ 'मागध' उस पर अडिग रहते । 'मागध' जी की दृढ़ता बड़ी प्रभावी होती । इसका एक उदाहरण है गौहाटी विश्वविद्यालय में हिंदी शोध प्रबंध लेखन की भाषा को लेकर की गयी उनकी प्रतिज्ञा । उन्होंने विश्वविद्यालय की विद्वत परिषद (एकेडिमिक काउंसिल) में प्रतिज्ञा ली थी कि जब तक वे वहाँ पर है, अँग्रेजी में लिखे जानेवाले किसी भी हिंदी शोध प्रबंध पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे । इससे डॉ॰ 'मागध' की राष्ट्र भाषा के

प्रति समर्पण प्रेम की भावना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है । इस प्रतिज्ञा का उन्होंने निर्वाह भी किया । जाना जाता है कि इस कारण उन्हें वैयक्तिक लाभ से वंचित भी रहना पड़ा । प्रो॰ 'मागध' के इस त्याग से तत्कालीन कुलपति डॉ॰ चौधुरी काफ़ी प्रभावित हुए और उन्होंने गौहाटी विश्वविद्यालय के शिक्षक संघ (GUTA) को बताया कि 'इस दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति 'मागध' जी को वैयक्तिक क्षति पहुँचाना इनके स्वाभिमान को ठेंस पहुँचाना है, क्रूर मज़ाक करना है । अत:मेरे रहते इन्हें वैयक्तिक क्षति नहीं उठानी पड़ेगी ।' ऐसा माना जाता है कि कुलपति महोदय ने अपने वचन का पूरी ज़िम्मेदारी के साथ निर्वाह भी किया ।

डॉ॰ 'मागध' ने गौहाटी विश्वविद्यालय में कार्यभार ग्रहण किया था व्याख्याता के रूप में, बाद में वे ही विभाग के पहले रीडर और विभागाध्यक्ष बने । उनके कार्यकाल में विभाग ने काफ़ी उन्नति की । दो व्यक्तियों से आरंभ हुआ विभाग उन्हीं के प्रयत्नों से आठ व्यक्तियों वाला बना । विभाग में तुलनात्मक शोध कार्य के प्रेरक और आरंभ कर्ता भी डॉ॰ 'मागध' ही थे ।

2.1.5 मणिपुर विश्वविद्यालय में कर्म जीवन

गौहाटी विश्वविद्यालय की सेवा छोड़कर फरवरी,1985 ई॰ में डॉ॰ 'मागध' ने मणिपुर विश्वविद्यालय, इंफाल के हिंदी विभाग में प्रोफेसर और अध्यक्ष पद ग्रहण किया । असम से भावात्मक जुड़ाव हो जाने के कारण वे गुवाहाटी छोड़कर जाना तो नहीं चाहते थे, पर प्रो॰ डी. एन. मजूमदार, प्रो॰ बी. डी. सिंह, डॉ॰ धर्मदेव तिवारी उन्हें यहीं कहते कि नौकरी करनेवालों के लिए जैसे गुवाहाटी वैसा ही इम्फाल । यह बात सुनते-सुनते अंतत: उन्होंने वहाँ जाने का निश्चय किया और चले गये । डॉ॰ 'मागध' के मणिपुर जाने के पहले ही अध्यापक और लेखक रूप में उनकी ख्याति वहाँ चर्चित हो चुकी थी । लोग भी अनजाने नहीं थे । डॉ॰ 'मागध' के लिए गौहाटी छोड़कर मणिपुर जाना अधिक लाभप्रद रहा । सबसे बड़ी बात यह हुई कि विरोधियों से उन्हें मुक्ति मिली, इस कारण मानसिक शांति मिली । गौहाटी में डॉ॰ 'मागध' पर अनावश्यक मानसिक दबाव रहा करता था, जिससे वे वहाँ पूरी तरह मुक्त हो सके । पदोन्नति तो हुई ही थी, साथ ही साठ वर्षों की अवस्था

के पश्चात वहाँ पाँच वर्षों के लिए पुनर्नियुक्ति भी मिली । गौहाटी विश्वविद्यालय में उस समय तक पुनर्नियुक्ति का प्रावधान नहीं था ये कुछ ऐसे कारण हैं जिनसे मुझे लगता है कि मणिपुर आना डॉ॰ 'मागध' के लिए अच्छा रहा ।

डॉ॰ 'मागध' के कार्यभार ग्रहण करने के पहले से मणिपुर विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग में दो रीडर और एक व्याख्याता थे । दो अंशकालीन व्याख्याता भी थे । एक व्याख्याता की नियुक्ति डॉ॰ 'मागध' के साथ ही हुई थी । पहले वहाँ विभाग में शांति स्थापित कर पारस्परिक सहयोगिता का वातावरण बनाया गया । वह अन्य विभागों के लिए भी आदर्श बना । अपने कार्यकाल में वहाँ के विभाग में भी गुणात्मक और संख्यात्मक वृद्धि की । छात्रों की संख्या 5/6 से 30/35 तक हुई और विभाग में अध्यापकों की संख्या भी आठ हुई । वे प्रशासनिक कार्यों में अपने को प्राय: नहीं उलझाते हुए अध्यापन और स्वाध्याय पर अधिक ध्यान देते थे । यहीं कारण था कि प्रथम चक्र में कला संकाय का अधिष्ठाता (डीन) तक बनना स्वीकार नहीं किया, पर दूसरे चक्र में कुलपति महोदय के अतिरिक्त कला-संकाय के पूर्व अधिष्ठाता एवं मणिपुरी और अँग्रेजी विभागों के अध्यक्षों के कहने पर उन्होंने अधिष्ठाता पद स्वीकार किया । कला विभाग के अधिष्ठाता के रूप में भी उनका कार्यकाल निर्द्वंद्व और शांति पूर्ण रहा ।

मणिपुर विश्वविद्यालय में प्रो॰ 'मागध' के स्वाध्याय और लेखन की दिशा में एक बार पुन: नया मोड़ आया । अब उनका ध्यान मुख्यत: वेद-उपनिषद-पुराण आदि भारतीय सांस्कृतिक वाङमय की ओर मुड़ा । मूल ग्रन्थों के अध्ययन अनुशीलन के आधार पर उन्होंने हिन्दू देवत्व शास्त्रीय लेखन पर ध्यान दिया । हिन्दू देवमाला के अंतर्गत उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई, जिसमें कई पुरस्कृत भी की गयी । असमिया के प्रति जुड़ाव भी बना रहा, पर साथ ही मणिपुरी साहित्य और संस्कृति भी उनके स्वाध्याय में जुड़ गया । मणिपुरी वैष्णव मत एवं संस्कृति विषयक कई लेख भी प्रकाशित हुए । मणिपुर विश्वविद्यालय के सेवा की अवधि में डॉ॰ 'मागध' ने विभिन्न प्रांतीय, राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय स्तर की गोष्ठियों एवं पुनश्चर्चा पाठ्यक्रमों में भाग

लेकर न केवल अपना अंश दान किया, वरन अपने व्याख्यान से लोगों के आकर्षण बिन्दु भी बनते रहे । मानव संसाधन मंत्रालय के राजभाषा विभाग की ओर से 'नेशनल लैक्चरर' के रूप में कई विश्वविद्यालयों में प्रो॰ 'मागध' ने अपने व्याख्यान से लोगों को प्रभावित किया । प्रायोजित व्याख्यान माला के अंतर्गत उन्होंने शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, उत्तर गुवाहाटी, में हिंदी और असमिया साहित्य पर तीन तुलनात्मक व्याख्यान दिया । इम्फाल नगर में श्री आतमबापू शर्मा स्मारक व्याख्यान माला के अंतर्गत उन्होंने 'ऑरिजिन एंड डेव्लपमेंट ऑफ वैष्णविज्म इन असम' पर दो व्याख्यान दिये । इनके अतिरिक्त नगर में होनेवाली विभिन्न साहित्यिक गोष्ठियों में भी उनकी उपस्थिति अनिवार्य होती ही थी । राजभाषा विभाग द्वारा आयोजित किए जानेवाले नव लेखक शिविर में उनके व्याख्यान नवीन सूचना प्रदायक ही होती थी । अपने हिंदी विभाग द्वारा आयोजित 'भारतीय भाषाओं में उपन्यास साहित्य पर त्रिदिवसीय संगोष्ठी 'असमिया उपन्यास साहित्य की प्रगति' के अंतिम सत्र में अध्यक्षीय पद से भाषण दिया । प्रो॰ 'मागध' का भाषण न केवल चर्चित हुआ वरन उससे प्रतिभागियों को नयी दिशा भी मिली । उसकी पूरी रिपोर्ट 'दिनमान' साप्ताहिक पत्रिका में भी प्रकाशित हुई थी ।

साठ वर्ष के होने पर सन 1994 ई॰ में वे सेवा निवृत हुए, पर मणिपुर विश्वविद्यालय ने उन्हें पाँच वर्षों के लिए पुनर्नियुक्ति दी । इस प्रकार प्रो॰ 'मागध' अक्टूबर, 1999 ई॰ तक वहाँ की सेवा में रहे । इसी बीच वे रोगाक्रांत भी हुए । सन 1996 ई॰ के दिसम्बर मास में पहली बार हृदयाघात हुआ । उनकी पौरुष ग्रंथि भी बढ़ गई । शरीर एक प्रकार से व्याधि मंदिर में परिणत हो गया । उचित चिकित्सा से स्वास्थ्य लाभ तो हुआ, पर खान-पान आदि में अनेक विधि-निषेध लागू हुआ । चिकित्सकों, मित्रों आदि की राय से उसे प्रो॰ 'मागध' ने 'आक्युपेशनल थेरेपी' के रूप में स्वीकार किया जो उनके लिए 'थियो पेली' बन गयी । इस कारण उनका स्वाध्याय एकदम रुका नहीं, पर उसकी गति मंद अवश्य हो गयी ।

मणिपुर विश्वविद्यालय के कार्यकाल में भी प्रो॰ 'मागध' राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्यों से जुड़े रहे, किन्तु किसी भी राजनैतिक दल के साथ उनका जुड़ाव नहीं था। मणिपुर की सेवा समाप्ती के पश्चात वापसी के पूर्व प्रो॰ 'मागध' ने अपना फर्नीचर इम्फाल नगर के राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यालय को भिजवा दिया। मणिपुर का उनका कार्य काल अपेक्षया अधिक शांतिपूर्ण रहा।

2.1.6 ईटानगर होते हुए गाँव वापसी:

अरुणाचल विश्वविद्यालय में सन 1999 ई॰ में हिंदी का स्नातकोत्तर विभाग खुला। वहाँ के कुलपति महोदय का प्रो॰ 'मागध' से आग्रह रहा कि कम से कम एक वर्ष के लिए विजिटिंग प्रो॰ के रूप में वहाँ रह कर वे विभाग को सहीं दिशा प्रदान करें। प्रो॰ 'मागध' को वह आग्रह अस्वीकार नहीं हुआ। मणिपुर से सेवा निवृत होने के पश्चात दिसम्बर, 1999 ई॰ में उन्होंने अरुणाचल विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में विजिटिंग प्रोफेसर का पद ग्रहण किया। वहाँ वे दो वर्ष रहे। तदन्तर दिसम्बर, 2001 ई॰ में वहाँ की सेवा से मुक्त हो अपने स्थायी निवास अर्थात अपने पैतृक गाँव छकौड़ी बिगहा लौट गये। और वहीं रहते हुए आज अस्सी से अधिक वर्ष की अवस्था में भी स्वाध्याय में जूड़े है।

प्रो॰ 'मागध' अपने छात्रों को सफलता प्राप्त करने के लिए योग्य युक्ति और कुशल साधन बतानेवाले गुरुजी थे। डॉ॰ परेशचंद्र देव शर्मा ने उनसे प्रथम परिचय के क्रम में ही उनके नाम के शब्दों को खींचते हुए जिस रूप में व्याख्यायित किया था, वह सदा सार्थक रहा- "कुशल अध्यापन द्वारा छात्रों के मन को आकर्षित कर (कर्षितमन: इति कृष्ण:) उन्हें अयन (लक्ष्य) तक पहुँचाने वाले (नारायण) प्रसादित करने वाले (प्रसाद), अनुसंधित्सुओं की नासमझी को ज्ञान और प्रकाश द्वारा दूर करने वाले (स्व्यंमाचरित शिद्यानाचारे स्थापयति....) का नाम है- आचार्य कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध'।"[७]

अरुणाचल विश्वविद्यालय, ईटानगर, के हिंदी विभाग द्वारा दिसम्बर, 2001 ई॰ में आयोजित प्रो॰ 'मागध' के विदाई समारोह में उनके अनेक शोध छात्र और अन्य शिष्य एकत्र हुए थे । उन सब ने गुरुवर प्रो॰ 'मागध' जी को अभिनंदित करने के उद्देश्य से एक अभिनन्दन ग्रंथ प्रकाशित करने की योजना बनायी । वह अभिनन्दन ग्रंथ सन 2003 ई॰ में तैयार हुआ । असम के राज्यपाल महामहिम डॉ॰ एस. के. सिंहा के हाथों उसे प्रो॰ 'मागध' जी को समर्पित कराने का निश्चय हुआ । एतदर्थ छह अप्रैल, सन 2003 ई॰ को असम राजभवन के दरबार-कक्ष में सभा आयोजित हुई । उस सभा में असम के राज्यपाल महामहिम सिंहा जी ने प्रो॰ 'मागध' जी को अभिनन्दन ग्रंथ (संस्कृति साधक प्रो॰ कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध') समर्पित किया एवं नगर की अन्य सत्रह संस्थाओं द्वारा भी उन्हें सम्मान स्वरूप 'फुलाम गमोछा' आदि समर्पित किये गये । असम राजभवन के दरबार-कक्ष में आयोजित होनेवाली वह ग्रंथ की पहली महत्त्वपूर्ण सभा थी । प्रो॰ 'मागध' को वंदित-अभिनंदित कर असम ही नहीं सारा उत्तर पुर्वांचल भी कृत-कृत्य हुआ । सबने प्रो॰ 'मागध' के दीर्घायु होने की कामना की । आप मार्केण्ड्य की तरह कालजीवी हों- कीर्तियर्सी स जीवति: ।

'मागध' जी के दो पुत्र हैं । बड़े है- अच्चुत्य नारायण और छोटे है- संजय नारायण । अच्चुत्य नारायण उत्तर प्रदेश शासन के स्वास्थ्य विभाग में चिकित्सक के रूप में कार्यरत है । इनकी दो संताने हैं – पुत्री अंकिता और पुत्र समीर । संजय नारायण जी इंजीनियर है और भारत सरकार के अंतर्गत सीमा-सड़क संगठन में कार्यरत है । उनकी भी एक पुत्री और एक पुत्र है । दोनों पुत्र सपरिवार प्राय: अपने-अपने कार्य स्थालों पर ही रहते हैं । डॉ॰ 'मागध' जी की पत्नी श्रीमती रामप्यारी देवी 'मागध' जी के साथ गाँव में रहती है ।

डॉ॰ 'मागध' संयुक्त परिवार में विश्वास रखते है । यही कारण है कि वे आज भी संयुक्त परिवार के सदस्य है । उनके चाचा का निधन सन 2007 ई॰ में हुआ । आजीवन घर के मुखिया रहे चाचा का एकमात्र पुत्र प्रेमनारायण जी बिहार सरकार की इंजीनियरिंग सेवा से निवृत हो चुके है ।

उनके तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं । उनके चचेरे भाई प्रेमनारायाण ही घर के सर्वमान्य मुखिया है । इस प्रकार का उदाहरण सम्पन्न परिवार में शायद देखने-सुनने को ही मिलाता है । डॉ॰ 'मागध' का यह व्यक्तिव और प्रेम अनुकरणीय तो है ही विस्मरणीय भी है ।

प्रो॰ 'मागध' की जीवनी को समेटते हुए डॉ॰ धर्मदेव तिवारी जी के शब्दों में कहा जाएगा कि " मगध की मिट्टी ने 'मागध' जी को जन्म दिया । ज्ञान की नगरी काशी के हिन्दू विश्वविद्यालय से उन्होंने हिंदी विषय पर प्रथम स्थान प्राप्त किया एवं उनका पहला कार्य क्षेत्र बना मगध ही, पर कालांतर में उसका विस्तार गोपालगंज से गुवाहाटी होते हुए मणिपुर तक पहुंचा । उन्होंने जीवन जिया ग्रंथ भाषी का ही, पर जीवन का श्रेष्ठ अंश यौवन दिया उत्तर पुर्वांचल के हिंदीतर भाषी राज्यों को । सेवा-निवृति के पश्चात मणिपुर से मगध वापसी में एक पड़ाव अरुणाचल भी हुआ । प्रो॰ 'मागध' का मगध से मणिपुर तक की यात्रा का यहीं संक्षिप्त लेखा-जोखा है । ईश्वर से प्रार्थना है कि वे दीर्घायु बने, स्वस्थ रहें और अपनी अनवरत सारस्य साधना में जूटे रहें ।"[८]

2.2 डॉ॰ 'मागध' का व्यक्तित्व:

व्यक्तित्व निर्माण में पारिवारिक, सामाजिक पृष्ठभूमि और जीवन की छोटी-बड़ी घटनाओं का बड़ा योगदान होता है । डॉ॰ 'मागध' के व्यक्तित्व निर्माण के लिए भी यह सत्य है । तीन वर्ष की अवस्था के पूर्व ही इनकी माता की मृत्यु और छह वर्ष की अवस्था होते ही पिता का लकवा ग्रस्त हो जाना जैसी घटनाओं से बालक कृष्ण अप्रभावित नहीं रहा । परिवार में वे पिताजी की अपेक्षा पितामह से अधिक प्रेरित-प्रभावित हुए । उन्हीं की देख-रेख में 'सुखसागर', 'प्रेमसागर', 'महाभारत' आदि धार्मिक पुस्तकों को पढ़ना, मिडिल स्कूल में पढ़ते समय ही गीता प्रेस, गोरखपुर, द्वारा आयोजित 'गीता' और 'रामायण' की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करना जैसी घटनाएँ भी 'मागध' जी के व्यक्तित्व निर्मित करने का कारक बनीं ।

स्कूली जीवन में ख़ानक़ाह हाईस्कूल के प्रधानाध्यापक श्री अब्दुल रजाक साहब और कॉलेज जीवन में प्रो॰ सिद्धेश्वर प्रसाद जी के विचार उनके आदर्श रहे । छात्र जीवन से ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से जुड़ाव के कारण जाति, वर्ण, भाषा, प्रांत आदि के भेदमूलक विचारों की जगह भारत और भारतीयता के आदर्शों से सदा जुड़े रहने की प्रेरणा मिलती रहीं । सबके व्यक्तित्व में स्थिरता, गंभीरता, सत साहित्य के अध्ययन के प्रति रुचि और राष्ट्र प्रेम को बढ़ावा मिला । भारत की समन्वित संस्कृति, भारतीय अस्मिता, भारत के मानकों और मानबिन्दुओं के प्रति उनकी सहज अनुरुक्ति एतद आग्रहशील बनती और परिपक्क होती गयी ।

'मागध' जी के जुझारू व्यक्तित्व का बीज वपन बाल्यकाल में ही हो चुका था, जिसका प्रतिफलन उनकी कृतियों में हुआ है । नियमित शिक्षा बी. ए. तक ही हुई, आगे सब कुछ अपने बलबूते पर प्राइवेट रूप में किया – 'सयुमेव मृगन्द्रेता' । प्रत्यक्ष शिष्यत्व प्रो॰ सिद्धेश्वर प्रसाद का मिला, पर ज्ञान, बोधि और अनुभूति को आत्मसात कर जीवन में उतारने का प्रयत्न वे निरंतर करते रहे ।

वे काम को पुजा जैसा महत्त्व देते । वे उसे गीता का व्यावहारिक कर्मयोग कहते । वे मानते रहे कि साहित्य साधना-अध्ययन-मनन-लेखन सोने के सिंहासन पर बैठ कर करना संभव नहीं है । विज्ञापन और नारेवाजी के इस युग में भी उन्होंने आत्मानुमोदन नहीं छोड़ा, आत्मप्रचार नहीं किया । उपेक्षा के दंश से न ही कभी आहत या कुंठित हुए और न कभी विरोधियों के आगे झुके । अपने कार्य में सदा डटे रहे । 'मागध' जी बहुभाषाविद, सरलता, विद्वता और कर्मठता की मूर्ति, कुशल प्राध्यापक और साहित्य एवं भारतीय धार्मिक-सांस्कृतिक वाङ्मय के गंभीर अध्येता, आत्मविज्ञापन से विमुख, एकांतिक, तपोनिष्ठ, उदारमना, निरपेक्ष, अमहत्वाकांक्षी हैं । 'मागध' जी सबकी सहायता के लिए तत्पर रहते । ज्ञानज्योति से द्विप्त, शोधमनीषी, कालजयी अनेक कृतियों के कर्ता, देवतशास्त्रीय अध्ययन की दिशा में डॉ॰ 'मागध' ने ऐतिहासिक क्रोरशिला स्थापित कर आर्य परंपरा के वैपुत्य का प्रमाण उपस्थित किया है । अर्थलाभ या यशोलाभ होगा या

नहीं, वे कभी नहीं सोचते थे । वे स्वीकृत कार्य करते रहने के विश्वासी, बहुआयामी वंदनीय सारस्वत साधक, मौलिक चिंतक और शोधी विद्वान के रूप में अपने व्यक्तित्व में सदा मान्य रहे । उनमें अखंड रचनाधर्मिता एवं वैषयिक ज्ञान का अपूर्व संगम है । डॉ॰ 'मागध' जी भारतीय पारंपरिक मान्यताओं पर खरे उतरते है । गहन-गंभीर व्यक्तित्व से उनकी विद्वता अनेक क्षेत्र में मानदंड का संकेत है । कठोरता, जिद और अडिग स्वभाव, उग्रता आदि अपने-आप में बड़े दोष हैं । अचानक या कभी-कभार सभी दोष 'मागध' जी में भी दिखाई पड़ते हैं । किन्तु आश्चर्य होता है जब इन दोषों को भी वे गुणों के रूप में परिवर्तित कर लेते हैं । जिद और हठ उनमें काम करने की एकतानता प्रदान करती है । जिस काम को करने की बात वे एकबार सोच लेते है, उसे किसी भी कीमत पर पूरा अवश्य करते है । तात्पर्य यह है कि एक दुर्गुण को भी अच्छे गुण में बदल देना उनका स्वभाव है । इन कारणों से ही उन्हें अभिनंदन ग्रंथ में 'साधक सन्यासी' और प्रो॰ भूपेन्द्र नाथ रायचौधुरी ने उन्हें 'प्राच्यतत्वविद' कहा ।

'मागध' जी बोलते कम और करते अधिक है। वे मेधावी और शोधाश्रयी तो है ही, उनकी बौद्धिक प्रोढ़ता पदे-पदे व्यक्त होती है । उनका मस्तिष्क जितना प्रखर है, मन उतना ही उदार और कोमल, बौद्धिक तीक्ष्णता जितनी पैनी है, समीक्षात्मक और गवेषणात्मक सृजन की प्रतिभा उतनी ही सहज और सहृदय । उनके लेखन में महर्षि व्यास का आदर्श 'न हि मानुषात श्रेष्ठतर हि किंचिंत'- मनुष्यता ही बिम्बित है । उनका व्यवहार, 'आत्मवद सर्वभूतेषु' और 'पंडित: समदर्शिण:' को परिभाषित करनेवाला है । किसी का भी योग्य सत्कार करने से वे चूकते नहीं । अति व्यस्त क्षणों में भी जब कोई उनके निकट अपनी समस्या लेकर आया, उन्होंने अपना काम रोक कर उसे सहयोग किया । उनका आदर्श वाक्य रहा – दानी का धन कभी नष्ट नहीं होता । वे मानते रहे अकेला भोक्ता पापी होता है- 'केवलधो भाति केवलादी', सबका भला देखो- 'सर्वस्व पश्चत' । वे अपनी विद्वता के बारे में स्वयं अनभिज्ञ और तटस्थ ही रहे । विवेकी मन निश्चय ही अन्यों के तुच्छ गुण को भी ग्रहण कर लेता है, पर अपने बड़े गुण से भी असंतुष्ट रहता है । वे इस कथन के मूर्ति मान रूप है । वे कभी बैठे नहीं रहते, सदा काम ही करते रहते- कुछ लिखते रहते या

पढ़ते रहते या किसी को कुछ मार्गदर्शन ही करते । विद्यानुरागी ही नहीं वे विद्या को जीते भी है । सादगी, शालीनता, श्रमशीलता, मिलनसारिता, अहंकाररहित आदि उनमें था और शोध में उनकी गहरी रुचि थी । मौलिक चिंतक और शोधी विद्वान के रूप में वे अपने कार्यक्षेत्र में सदा मान्य रहे ।

वे उत्तर पुर्वांचल के हिंदीतर भाषी राज्यों में स्नातकोत्तर ग्रंथ शिक्षण और तुलनात्मक शोधकार्य की प्रतिष्ठाता ही नहीं, दिशा देनेवाले बहुपथीन हस्ताक्षर रहे, वे शालीनता मृदुता और व्यवहार कुशलता में किसी से पीछे नहीं रहे । उनकी गंभीर सहिष्णुता को लोग दुर्बलता मानने की भूल करते रहे, सीमा को लाँघ जाने पर सहिष्णुता ही निष्ठा की दृढ़ता बन जाती है । 'मागध' जी का व्यक्तित्व इसी का साक्ष्य प्रस्तुत करता हैं ।

डॉ॰ 'मागध' को निकट से देखने, जानने-सुनने वाले विद्वान, उनके सहकर्मियों, छात्रों आदि ने सस्मरणों में उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं के बारे में विस्तार पूर्वक लिखा है । यहाँ उनमें से कुछ को उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा । डॉ॰ विजयराव रेड्डी ने 'मागध' जी को "नैंरतर्थ शोध की प्रतिमूर्ति"[९] के रूप में स्वीकार किया तो डॉ॰ परिमल भट्टाचार्य ने उन्हें "छिपा हुआ सोना"[१०] कहा है । प्रो॰ भव प्रसाद चलिहा ने अपने संस्मरण 'असम बंधु कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध'' में उन्हें "असम का प्रकृत बंधु कहा" ।[११] वे सादा जीवन और उच्च विचार को महत्त्व देते थे । रामेश्वर प्रसाद सिन्हा के अनुसार "उनका रहन-सहन जैसा सादा था, वैसा भोजन भी । खाने-पीने की सारी सामग्री रहती । स्वयं तो कम ही खाते, पर दूसरों को ताव से खिलाते । धूम्रपान ही एक ऐसी लत थी जिससे वे चाह कर भी मुक्त नहीं हो सके । वे दृढ़ निश्चय के धनी और स्वाभिमानी थे । एक बार निश्चय कर लेने पर उन्हें उससे डिगाना असंभव होता था । उसी प्रकार, वे कोई भी काम स्वाभिमान और आत्मगौरव को छोड़कर नहीं करते थे । गलत निर्णय के घोर विरोधी थे । एक ओर जहां अनुशासन के लौह पुरुष थे वहीं दूसरी ओर अपने छात्रों के प्रति उतने ही उदार भी । सचमुच जो उदार होते है वे स्वभाव से ही परोपकारी होते है । उन्होंने न केवल

विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया, अपितु शिक्षकों को भी योग्यता उन्नति के लिए उत्साहित किया करते थे । उनकी प्रेरणा से कई शिक्षकों ने स्नातक या स्नातकोत्तर योग्यताएँ प्राप्त की ।"[१२] प्रो॰ भूपेंद्रनाथ राय चौधुरी के अनुसार "विद्वता के साथ उनमें जो सहजता और अपनत्व की भावना थी उसके कारण ही गुणमुग्धों की संख्या में बढ़ोतरी होती रही । वे राजनीति करना जानते तो बहुत परन्तु उनका संकोचशील स्वभाव इसका बाधक बना । अपने ज्ञान को विज्ञापित करना वे अपने व्यक्तित्व के खिलाफ मानते है । किसी पर कोई विचार थोपने के भी वे पक्षधर नहीं है । वे हमेशा व्यक्ति स्वतंत्र विचारों के हिमायती रहे ।"[१३] प्रो॰ श्यामशंकर सिंह के अनुसार "उनकी अहंशून्यता उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग थी, दिखाना भर नहीं । 'मागध' जी ने अपने कर्म के आधार पर भाषा और साहित्य के उच्च स्तर पर अध्यापन और शोध के संदर्भ में पुर्वांचल क्षेत्र में नींव के पत्थर माने जाते है । अपनी उपलब्धियों के कारण राष्ट्रभाषा के इतिहास में उन्हें नींव का पत्थर माना गया होगा । उन्हें किसी की निंदा करते हुए नहीं देखा । वे जैसे बाहर से थे, मन, बचन और कार्य से वैसे ही दिखते थे । बिगड़े हुए को बनाने में उनका विश्वास था न कि बिगाड़ने में । यथोचित आक्रोश एवं दुस्साहस को समझने की उनमें अद्भुत क्षमता थी ।"[१४]

प्रो॰ जगमल सिंह ने डॉ॰ 'मागध' के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर अपेक्षया विस्तार से विचार किया है । उनके अनुसार 'मागध' जी की उपस्थिति में विभाग में बौद्धिक माहौल तो रहता ही, ज़िंदादिली भी कम नहीं होती । विभाग के अध्यक्ष अथवा कला संकाय के अधिष्ठाता, किसी भी रूप में उनके उदार और भरोसेमंद, व्यावहारिक और रचनात्मक प्रशासन एवं प्रबंधन की सबने प्रशंसा की । 'मागध' जी को अध्यापक, आलोचक, गवेषक, अनुवादक, संपादक, वक्ता, भारत विद्या के विद्वान, प्रशासक आदि रूपों में पर्याप्त ख्याति मिली है । वे प्रकृति से दयालु, उदार, भरोसेमंद, निष्ठावान, सहनशील किन्तु स्वाभिमानी है । उनका आत्मविश्वास और स्वाभिमान अनेकबार हठ की सीमा छूने लगता है । इसमें उनकी प्रभावी दृढ़ता का भी कम योग नहीं है । उनका व्यक्तित्व अंतर्मुखी है जिससे उनके प्रति प्रथम दृष्टया नकारात्मक और असामाजिक तक होने का भाव भी जगता है । उनके निवास पर जब भी गप्प-गोष्ठियाँ जमतीं, वे

उसमें उपस्थित रहकर भी अनुपस्थित रहते, स्वागत-सत्कार में किसी प्रकार की कमी भरसक नहीं होने देते, चाय तो वे स्वयं ही बनाते । बौद्धिक जमावड़ों में हिस्सेदारी निभाते एवं बहसों में प्राय: सब को पीछे छोड़ देते । उनके व्यख्यानों में विषय के उपस्थापन की नवीनता, विवेचन की गंभीरता और स्पृहणीय मौलिकता होती । विभाग में अन्यत्र कहीं भी उनकी समाजिकता झलक पड़ती । शेष समय वे निवास में ही बिताते । अपने निवास की सफाई कर व्यवस्थित रखना, अपने लिए भोजन आदि बनाना और शेष समय पढ़ना-लिखना, यही उनकी दिनचर्या थी । उनकी एक ही तस्वीर सभी परिचितों की नजर में उभरती – मोटी-मोटी किताबों से भरी शेल्फ से घिरी एक मेज़ और एक कुर्सी, 'मागध' जी कुर्सी में डटे कोई किताब पढ़ रहे है या कुछ लिख रहे है । बीच में उठकर चाय बना लेते है । चाय की चुस्की और पढ़ाई साथ-साथ चलती है । लिख रहे होते है तो चाय समाप्त कर सिगरेट सुलगा लेते है । बस अकेले, निष्कंप, न घर साथ है, न परिवार । पूरी तरह किताबी व्यक्ति, प्रबल इच्छाशक्ति सम्पन्न और स्वाध्याय केन्द्रित विद्वान, महफिलबाज़ या गप्प-गोष्ठी पसंद तो हो नहीं सकते । समूह में साधना की ही नहीं जा सकती, वह अकेले रहते हुए ही संभव है । अपनी मेज़-कुर्सी और कमरे में कैद बौद्धिक रूप से क्रियाशील बने व्यक्ति को सांसारिक तो कहा नहीं जा सकता । ऐसे व्यक्ति ही भारतीय दृष्टि में मनीषी, ऋषि आदि संज्ञाओं से जाने जाते है ।[१५]

2.3 प्रो॰ 'मागध' का कृतित्व :

डॉ॰ 'मागध' मूलत: अध्यापक तथा अध्येता रहे है । परंतु समय समय पर उन्होंने कई रचनाएँ रची हैं । उनके द्वारा रचित, संपादित, अनूदित तथा ग्रंथ, असमिया एवं अंग्रेजी में लिखित लेख प्रकाशित हुए है । उनकी रचनाओं के लिए उन्हें कई सम्मनों से नवाजा भी गया है । असमिया साहित्य के पाठकों और विद्वतजनों के लिए 'मागध' जी का नाम अपरिचित नहीं है । वे ऐसे ग्रंथ भाषी विद्वान है जिन्होंने हिंदी के साथ-साथ असमिया साहित्य विषयक

आलोचनात्मक लेख लिखा है । हिंदी साहित्य में रचित अपनी लेखनियों के माध्यम से 'मागध' जी ने हिंदी साहित्य एवं भाषा पर विस्तृत प्रकाश डाला है तथा हिन्दू देव-देवी विषयक रचनाओं के जरिए उन्होंने हिन्दू धर्म के समस्त देव-देवी को एकत्म रूप में प्रतिष्ठित किया है । उन्होंने लिखा है मूलतः हिंदी में ही परंतु असमिया साहित्य विशेषकर आलोचना के क्षेत्र में उनका योगदान द्रष्टव्य है । असमिया रामायणी साहित्य एवं असम में वैष्णव धर्म का प्रवर्तन करनेवाले शंकरदेव एवं माधवदेव के ऊपर उन्होंने जो आलोचनात्मक हिंदी लिखे हैं वे उल्लेखनीय हैं । असमिया साहित्य से संबन्धित अनेक लेख उन्होंने ग्रंथ और असमिया दोनों भाषाओ में लिखा है । इन लेखनियों ने असमिया आलोचना विधा को नई दिशा प्रदान की है ।

उनके लेखन मूलतः तीन प्रकार के हैं – हिंदी भाषा साहित्य विषयक, हिन्दू देवशास्त्र विषयक और असमिया साहित्य-संस्कृति विषयक आलोचनात्मक ग्रंथ ।

हिंदी भाषा साहित्य विषयक प्रमुख रचनाएँ हैं – हिंदी साहित्य युग और धारा, काव्यशास्त्र विमर्श, काव्य के विभिन्न अंग, हिंदी साहित्य और साहित्यकार, मगध और उसके महत्त्वपूर्ण स्थान, मुग्धबोध हिंदी व्याकरण, अलंकार विमर्श, अददहमान विरचित संदेश रासक ।

हिन्दू देवशास्त्र विषयक रचनाएँ हैं – वाग्देवी सरस्वती, श्री लक्ष्मी, प्रजापति ब्रह्मा, श्री विष्णु और उनके अवतार, शक्ति देवता: देवी, आशुतोष देवता शिव, लोकदेवता श्री हनुमान ।

असमिया साहित्य-संस्कृति विषयक आलोचनात्मक ग्रंथ हैं – असम प्रांतीय हिंदी साहित्य, असम प्रांतीय राम साहित्य, माधवदेव व्यक्तित्व और कृतित्व, शंकरदेव: साहित्यकार और विचारक, शंकरदेव के नाटक, माधवदेव के नाटक ।

'मागध' जी ने अपनी रचनाओं के जरिए हिंदी तथा असमिया साहित्य पर अमिट छाप छोड़ी है । इन रचनाओं का संक्षिप्त रूप में परिचय देना प्रस्तुत शोध विषय के लिए आवश्यक बन पड़ा है । इसलिए यहाँ 'मागध' जी द्वारा रचित ग्रन्थों पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाला गया है –

हिंदी भाषा साहित्य विषयक रचनाएँ:

i) हिंदी साहित्य युग और धारा :- इस ग्रंथ में पचास निबन्धों को एक साथ संकलित किया गया है । पुस्तक की पृष्ठ संख्या है १-६६४ । इस ग्रंथ में हिंदी साहित्य के विभिन्न युगों को एकत्र रूप में देखने का प्रयास किया गया है । आधुनिक गद्य-कथात्मक निबंधों में उनके स्वरूप विकास पर ध्यान दिया गया है तथा निबंधों को ऐसे क्रम में समेटा गया है कि यह हिंदी साहित्य का एक ऐसा इतिहास ग्रंथ बन पड़ा है जो छात्र उपयोगी है । डॉ॰ सिन्हा जी ने पुस्तक की उद्देश्य व्याख्या करते हुए प्राक्कथन में लिखा है कि "प्रस्तुत ग्रंथ में आदिकाल से लेकर आजतक के हिंदी-साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का तार्किक विश्लेषण ही उनका उद्देश्य है ।"[१६] इस पुस्तक का प्रकाशन भारती भवन, पटना ने सन 1965 में किया था ।

ii) अलंकार विमर्श :- प्रस्तुत ग्रंथ अलंकारों पर आधारित है । ग्रंथ में कुल पृष्ठ संख्या है १-५४८ । इस ग्रंथ में अलंकारों के विविध भेदों पर विचार किया गया है । कुल बयासी अलंकारों की विवेचना यहाँ की गयी हैं । इस पुस्तक में 'मागध' जी ने अलंकार के इतिहास, अलंकार की अवधारणा, अलंकार का महत्त्व, अलंकार की संघटना, अलंकारों का वर्गीकरण, तथा अलंकारों की परिभाषा उदाहरण सहित प्रस्तुत किया है । अलंकारों से संबंधिन विभिन्न प्रश्नों पर विचार करते हुए लेखक ने अपना अभिमत भी रखा है तथा अलंकार से संबन्धित प्रसिद्ध उक्तियों को भी संकलित किया है । अलंकारों को परिभाषित कर आधुनिक कविता से उनका उदाहरण प्रस्तुत करने के कारण पुस्तक ज्यादा महत्त्वपूर्ण तथा पठनीय बन पड़ी है । इस पुस्तक का प्रकाशन साथी प्रकाशन, पटना ने सन 1968 में किया था ।

iii) काव्य के विभिन्न अंग :- प्रस्तुत ग्रंथ में काव्य के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डाला गया है । ग्रंथ में कुल ग्यारह अध्याय है और पृष्ठ संख्या है १३३ । यहाँ काव्य के स्वरूप, काव्य-हेतु, काव्य प्रयोजन, काव्य के भेद, काव्य के तत्व, शब्दार्थ, रीति, गुण, रस,

अलंकार तथा छंद पर प्रकाश डालकर उनपर विचार किया गया है । लेखक ने 'यहीं से शुरू कीजिए में' खुद कहा है कि "इसका उद्देश्य काव्य और उसके अंगों का विमर्श अथवा मीमांसा नहीं, बोध कराना मात्र है ।"[१७] लेखक ने आसान तरीके से अपनी बात को व्यक्त कर ग्रंथ के विषय को पाठकों के लिए बोधगम्य बनाया है । यहीं पता चलता है कि 'मागध' जी काव्यशास्त्र के विदग्ध पंडित है । इस पुस्तक का प्रकाशन साथी प्रकाशन, पटना ने सन 1968 में किया था ।

iv) हिंदी बावनी काव्य :- 'मागध' जी का यह पीएच॰ डी॰ उपाधिपरक शोधग्रंथ है । इस शोध प्रबंध में कुल १०४ अप्रकाशित और ४१ प्रकाशित बावनियाँ है जिनका अध्ययन विभिन्न दृष्टिकोण से किया गया है । यह शोध प्रबंध सन 1968 की है और इसमें ५५१ पृष्ठ है ।

v) सूरदास और शंकरदेव के कृष्णभक्ति काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन :- यह 'मागध' जी का डी॰ लिट॰ उपाधि परक शोध ग्रंथ है । इस शोध प्रबंध में हिंदी के प्रसिद्ध कृष्ण भक्ति काव्य धारा के कवि सूरदास और असमिया के महामणि श्रीमंत शंकरदेव के कृष्ण भक्ति काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है । इस शोध प्रबंध में कुल ५९० पृष्ठ है और सन 1973 में इसका प्रकाशन हुआ था ।

vi) हिंदी साहित्य और साहित्यकार :- प्रस्तुत ग्रंथ एक इतिहास ग्रंथ है । इसमें हिंदी के प्रमुख ५१ साहित्यकारों की जीवनी तथा उनके द्वारा रचित साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया गया हैं । इस इतिहास ग्रंथ में १४० पृष्ठ है और इसका प्रकाशन आ. र. प्रकाशन ने सन 1974 में किया था ।

vii) काव्यशास्त्र विमर्श :- 'मागध' जी द्वारा रचित यह काव्यशास्त्र विषयक ग्रंथ है, सन 2001 में ही 'मागध' जी ने इसकी रचना की थी । इस पुस्तक में काव्यशास्त्र के उद्भव-विकास, स्वरूप, तत्व आदि पर दृष्टि डाली गयी है साथ ही काव्यशास्त्र के विभिन्न सिद्धांतों पर उदाहरण सहित विस्तृत वर्णन किया गया है । भारतीय काव्यशास्त्र के

विभिन्न अंगों को इस ग्रंथ में एकत्र रूप में प्रस्तुत किया गया है । इस ग्रंथ में कुल २७६ पृष्ठ है और इस ग्रंथ का प्रकाशन वाणी प्रकाशन ने सन 2012 में किया है ।

viii) मुग्धबोध हिंदी व्याकरण :- प्रस्तुत ग्रंथ में व्याकरण के सिद्धान्त और व्यवहार पक्ष पर विस्तृत रूप से विवरण किया गया है । व्याकरण पर विवेचन से पूर्व प्रस्तावना में भाषा, भाषा के विविध रूप, 'हिंदी' नाम, हिंदी भाषा, लिपि, नागरी की विशेषताएँ आदि पर प्रकाश डाला गया है । व्याकरण के अंतर्गत ध्वनि और वर्ण- विचार, शब्द-विचार तथा वाक्य-विचार तीन भागों में विभाजित कर उन पर विवेचना की गयी है । इस पुस्तक में कुल २४८ पृष्ठ है । इस पुस्तक का लेखन सन 2004 में ही हो चुका था परंतु इसका प्रकाशन सन 2010 में वाणी प्रकाशन ने किया ।

ix) मगध और उसके महत्त्वपूर्ण स्थान :- इस पुस्तक के प्रारम्भ में 'दो शब्द' में डॉ॰ दयानंद प्रसाद ने कहा है " पुस्तक मगध क्षेत्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का एक मौलिक अध्ययन है। जिसे लेखक ने सुग्राह्य और संग्रहणीय बना दिया है ।"[१८] प्रस्तुत पुस्तक के अंतर्गत लेखक ने दो खंडों में विभाजित कर विषय को अध्ययनीय बनाया है । पूर्वा खंड में पुराकाल से लेकर खिलजी के आक्रमण तक मगध के राजनीतिक इतिहास पर प्रकाश डाला गया है । परा में उस समय तक प्रसिद्ध हुए प्रमुख स्थानों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है । इस पुस्तक में कुल १३५ पृष्ठ है । इस पुस्तक का प्रकाशन सुदामा परमेश्वर साहित्य सम्मान संस्थान, बिहारशरीफ़, नालंदा ने सन 2012 में किया ।

x) अददहमान विरचित संदेश रासक :- 'मागध' जी बहूभाषा विद विद्वान है । यह पुस्तक असमिया भाषा में विरचित है । 'मागध' एवं प्रो॰ अनंत कुमार नाथ के संयुक्त प्रयास से इस पुस्तक की रचना हुई है । अब्दुल रहमान द्वारा रचित 'संदेश रासक' का यह असमिया अनुवाद है । यहाँ पुस्तक की समीक्षा भी प्रस्तुत की गयी है, जो

पुस्तक की मौलिक विशेषता है । इस पुस्तक में कुल २३२ पृष्ठ है और इसका प्रकाशन सन 2013 में बांधव प्रकाशन ने किया है ।

हिन्दू देवशास्त्र विषयक रचनाएँ :

xi) वाग्देवी सरस्वती :- 'मागध' जी द्वारा रचित हिन्दू-देवमाला विषयक यह पहला ग्रंथ है । इस ग्रंथ में पाँच अध्याय है । ग्रंथ में देवी सरस्वती के नदी और देवी रूप, दोनों रूपों की व्याख्या, देवी से जुड़े वैदिक और पौराणिक उल्लेखों, मिथकों, विश्वासों आदि के बारे में वर्णना की गयी है । देवी सरस्वती के विभिन्न रूपा चित्रों का भी विश्लेषण सहित चित्रण किया गया है । इस पुस्तक में १७३ पृष्ठ है और इसका प्रकाशन सन 1995 में राका प्रकाशन, ईलाहाबाद ने किया ।

xii) श्री लक्ष्मी :- यह पुस्तक हिन्दू-देवमाला विषयक दूसरी पुस्तक है । इस पुस्तक में पाँच अध्याय है जिनमें देवी लक्ष्मी के भिन्न रूपों का वर्णन किया गया है । वेदों-उपनिषदों के गहन अध्ययन के पश्चात इनमें देवी का वर्णन किस तरह किया गया है उसका वर्णन है तथा देवी लक्ष्मी और अन्य देवताओं का वर्णन भी यहाँ किया गया है । यहाँ श्री लक्ष्मी के समस्त रूपों को एकत्र रूप में प्रस्तुत किया गया है । इस पुस्तक में कुल २२५ पृष्ठ है और इसका प्रकाशन ग्रंथ बूक सेंटर, नई दिल्ली ने सन 1997 में किया है ।

xiii) प्रजापति ब्रह्मा :- प्रस्तुत पुस्तक 'मागध' जी द्वारा रचित एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें ब्रह्मा के देवत्व रूप को उज्वलित करने वाले पक्षों पर विचार किया गया है । आत्मिकी और परिशिष्ट को छोड़ कर पुस्तक में तीन अध्याय है । प्रथम अध्याय है अनुमानिकी, इसमें वैदिक साहित्य के आधार पर ब्रह्मा के पूर्वगामी देवताओं तथा ब्रह्मा और सर्ग की सलिलोत्पाती पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है । दूसरा अध्याय है प्रामाणिकी, इसमें पुराण तथा पुराणेतर और बौद्ध एवं जैन साहित्य में ब्रह्मा के देवत्व रूप पर प्रामाणिक आधार पर विचार-विमर्श किया गया है । तीसरा

अध्याय है प्रासादिकी, इसमें ब्रहमा की भिन्न रूपी मूर्ति या विग्रह और पुजा की विविध विधिओं पर विवेचन किया गया है । पुस्तक में ३२२ पृष्ठ है और इसका प्रकाशन सन 1999 में वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली ने किया है ।

xiv) श्री विष्णु और उनके अवतार :- यह 'मागध' जी द्वारा रचित भगवान विष्णु को समग्र रूप में प्रस्तुत करनेवाला ग्रंथ है । इस पुस्तक में आत्मिकी और परिशिष्ट को छोड़कर तीन तरंग है । पहले तरंग में वैदिक साहित्य में वर्णित विष्णु के देवत्व रूप पर प्रकाश डालते हुए विष्णु और इन्द्र के सखा भाव, विष्णु के जगत पालक रूप के साथ ही पशु, यज्ञ, नारायण के साथ उनके सम्बन्धों पर विचार किया गया है । द्वितीय तरंग में वेदिकोत्तर साहित्य में विष्णु के अवस्थान पर विचार किया गया है । पुराणेतर साहित्य तथा पुराण में विष्णु के वर्णन पर विचार किया गया है । विष्णु के निर्गुण और सगुण रूप, आयुध तथा लांछन, विष्णु की मूर्तियाँ, विष्णु के वाहन, विष्णु की पत्नी और विष्णु के देवत्व रूप की उपासना पद्धतियों पर विचार किया गया है । तृतीय तरंग में विष्णु के भिन्न अवतार पर विचार किया गया है , अवतार, अवतार प्रक्रिया, प्रयोजन, बीज, प्रकार और संख्या पर प्रकाश डाला गया है । तत्पश्चात विष्णु के प्रख्यात दस अवतार और अल्पख्यात उनतीस अवतारों का वर्णन किया गया हैं और साथ ही विष्णु की विभूति पर भी विचार किया गया है । विष्णु के भिन्न रूपी अड़तीस चित्रों का संयोजन भी यहाँ किया गया है । इस पुस्तक में कुल ४३५ पृष्ठ है और इसका प्रकाशन वाणी प्रकाशन ने सन 2001 में किया है ।

xv) आशुतोष देवता शिव :- हिन्दू देवमाला शृंखला की यह पुस्तक भगवान शिव पर आधारित है । प्रस्तुत पुस्तक के तीन अध्यायों में भगवान शिव का वर्णन किया गया है । प्रथम अध्याय में वैदिक साहित्य के आधार पर रुद्र रूप का वर्णन किया गया है । दूसरे अध्याय में पुराणेतर साहित्य तथा पुराणों में शिव का वर्णन और शिव के भिन्न रूपों का वर्णन मिलता है । तीसरे अध्याय में महादेव की उपासना, विभिन्न शिव

आख्यान तथा शिव परिवार पर विचार किया गया है । पुस्तक में शिव के इकतालीस चित्र भी संकलित किए गए है । पुस्तक में कुल २७३ पृष्ठ है और इसका प्रकाशन आर॰ एन॰ बावरी ट्रस्ट, रायपुर के सहयोग से मीनाक्षी प्रकाशन, छत्तीसगढ़ ने सन 2004 में किया है ।

xvi) शक्ति देवता: देवी :- प्रस्तुत पुस्तक शक्ति की देवी पर आधारित है । भारतीय समाज में शक्ति के महात्म्य पर विचार किया गया है । देवी के उद्भव-विकास पर प्रकाश डालते हुए लौकिक तथा वैदिक परम्पराओं पर विचार किया गया है । शक्ति की उपासना, तंत्राचार, देवी का महात्म्य, शक्तिपीठ, भारत माता, देवियों पर विचार करते हुए शक्तिपीठ कामाख्या, शक्तिपीठ विंध्वासिनी, शक्ति पुजा की प्राचीनता आदि पर विचार किया गया है और देवी के बीस चित्र प्रस्तुत किए गए है । पुस्तक में ३४२ पृष्ठ है । इसका प्रकाशन इंदौर से सन 2003 में किया गया है ।

xvii) लोकदेवता श्री हनुमान :- हिन्दू देवमाला की यह अंतिम पुस्तक है । इस पुस्तक में हनुमान के देवता रूप को प्रस्तुत किया गया है । प्रस्तुत पुस्तक में पुरोवाक और परिशिष्ट को छोड़कर तीन अध्याय है । प्रथम अध्याय अथातो हनुमत जिज्ञासा: अनुमानिकी में प्रायानिकी और वेद में हनुमान के वर्णन पर विचार किया गया है । द्वितीय अध्याय शास्त्र योनित्वात के अंतर्गत प्रथम उपखंड प्रामाणिकी में रामायण, महाभारत, पुराण, उपनिषद और तंत्र साहित्य में हनुमान पर विचार किया गया है तथा दूसरे उपखंड विस्तारिकी में विभिन्न आधारों पर हनुमान के देवता रूप पर विचार किया गया है । तृतीय अध्याय में हनुमान कथा, हनुमान चरित, हनुमान का पराक्रम, प्रज्ञा, रामदूत, रामभक्त आदि स्वरूप पर विवेचन किया गया है । पुस्तक में कुल २६८ पृष्ठ है और इसका प्रकाशन हेरिटेज फ़ाउंडेशन, गुवाहाटी ने सन 2011 में किया है ।

असमिया साहित्य-संस्कृति विषयक आलोचनात्मक ग्रंथ :-

xviii) असम प्रांतीय हिंदी साहित्य :- प्रस्तुत पुस्तक में असम प्रांत में रचित हिंदी रचनाओं तथा रचनाकारों का विवरण प्रस्तुत किया गया है । पुस्तक में चार अध्याय है । प्रथम अध्याय है हिंदी : भारती, इसमें काव्यभाषा के रूप में हिंदी के विषय में विविध दृष्टि से विवेचना की गयी है । द्‌वितीय अध्याय असम और हिंदी क्षेत्र में असम के विभिन्न कालक्रम के नामों पर विचार किया गया है तथा हिंदी क्षेत्र के नामों के साथ उनके संबंध पर विचार किया गया है । तृतीय अध्याय में आदि और मध्यकाल के पंद्रह साहित्यकारों और उनकी कृतियों पर विचार किया है । चतुर्थ अध्याय में हिंदी के प्रचार-प्रसार, अनुवाद, मौलिक सृजन आदि का परिचय तथा छब्बीस प्रमुख साहित्यकारों के परिचय के साथ उनका मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है । पुस्तक में कुल १५० पृष्ठ है और इसका प्रकाशन सन 1979 में हुआ था ।

xix) शंकरदेव साहित्यकार और विचारक :- प्रस्तुत ग्रंथ असम में वैष्णव मत का प्रवर्तन करनेवाले श्रीमंत शंकरदेव के जीवन तथा उनके द्‌वारा रचित कृतियों को लेकर रची गयी है । ग्रंथ में दस अध्याय है जिनमें शंकरदेव तथा उनकी रचनाओं की आलोचना की गयी है । श्रीमंत शंकरदेव को सर्वांग-समग्र रूप में प्रस्तुत करनेवाली हिंदी की यह पहली पुस्तक है । इस पुस्तक में कुल ४८४ पृष्ठ है और इसका प्रकाशन पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला ने सन 1976 में किया है ।

xx) माधवदेव: व्यक्तित्व और कृतित्व :- असमिया साहित्य विषयक 'मागध' जी की यह दूसरी पुस्तक है । श्रीमंत शंकरदेव के शिष्य और वैष्णव भक्त कवि माधवदेव के जीवन तथा उनके द्‌वारा रचित कृतियों पर यह ग्रंथ आधारित है । इस रचना से पूर्व किसी भी भाषा में माधवदेव और उनकी साहित्यिक कृतियों पर कोई भी पुस्तक नहीं रची गयी । पुस्तक में छह: अध्याय है । इन छह: अध्यायों में माधवदेव के जीवनवृत, रचना, नाटक, कवित्व, तत्व चिंतन और व्यक्तित्व के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया

है । पुस्तक में कुल २५६ पृष्ठ है और इसका प्रकाशन पूर्वोत्तर प्रदेशीय मारवाड़ी सम्मेलन, गुवाहाटी ने सन 1979 में किया है ।

xxi) असम प्रांतीय राम साहित्य :- प्रस्तुत ग्रंथ में असम राज्य के विभिन्न भाषाओं – असमिया, खामती, कारबी में रचित रामायण और रामायण पर आश्रित भिन्न काव्य तथा नाट्य साहित्य पर विस्तार से विवेचन किया गया है । यह पुस्तक हिंदी भाषा में रचित अपनी विषय की पहली पुस्तक है । पुस्तक में चार अध्याय है, जिनमें राम साहित्य के इतिहास, असमिया राम-साहित्य, असम प्रांत के अन्य भाषाओं में राम-साहित्य तथा रामायण पर विचार किया गया है । पुस्तक में कुल ४२२ पृष्ठ है और इसका प्रकाशन ग्रंथ विकास पीठ, मेरठ ने सन 1985 में किया है ।

यहाँ 'मागध' जी द्वारा स्वरचित ग्रंथों पर संक्षिप्त रूप में प्रकाश डाला गया है । इनके अलावा 'मागध' जी ने कई लेख लिखा है जो राष्ट्रीय स्तर के पत्रिकाओं में छप चुके है । इन्हीं लेख तथा उनके द्वारा अनूदित और संपादित रचनाओं का उल्लेख भर यहाँ किया जा रहा है, ताकि 'मागध' जी की रचनाओं का आभाष मिल पाए । सन 1971 ई॰ में उनका पहला लेख 'शंकरदेव : मूल्यांकन की समस्या' प्रकाशित हुई । लेख हिंदी में होने के कारण असमिया पाठकों का ध्यान प्राय: कम ही गया । स्व॰ श्री बापचन्द्र महंत द्वारा 'शंकरदेवर मूल्यायोनोर सोमोस्या' नाम से इसका अनुवाद कर नीलांचल में प्रकाशित होते ही सबका ध्यान उनकी ओर गया । तत्पश्चात 'मागध' जी के लेख आदि पर लोगों का ध्यान आकर्षित होने लगा । उनके द्वारा लिखित अन्य लेखों तथा संपादित और अनूदित कृतियों का यहाँ उल्लेख किया जा रहा हैं, जो इस प्रकार के हैं –

हिंदी में रचित लेख:

- गौतमधारा जल प्रपात की यात्रा (1953)
- चाणक्य नीति में जीव विज्ञान (1953)
- भारत में नारी का स्थान (1954)

- स्वातंत्रयोत्तर मगही साहित्य (आलोचना 35, 1966)
- हिंदी साहित्य में होली वर्णन (जनशक्ति 1970)
- मुक्तक सिद्धान्त और शिल्पन (समीक्षालोक 1970)
- आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री की कविता में रंगतत्व (वातायन 1971)
- लंबी कविता एक अध्यापकीय दृष्टि (समीक्षालोक 1971)
- पाती शूर्पनखा की तुलसी के नाम(प्रगति 1971)
- शंकरदेव के मूल्यांकन की समस्या (राष्ट्रवाणी, 1971)
- ब्रजी की महत्त्वपूर्ण कड़ी डूँगर बावनी (परिषद पत्रिका 1972)
- इन्दिरा: व्यक्ति नहीं विचार (रेलवे पत्रिका 1973)
- छावालर वाणी हेन अनुमानि, मने हुईबा परितोष (राष्ट्रसेवक 1973)
- तीर्थकर वर्धमान महाबीर की निर्वाणभूमि-मध्यमा पावा (प्राच्य भारतीया 1974)
- वीर धर्म (प्राच्य भारतीया 1974),
- उमापति शंकरदेव कृत 'पारिजातहरण' संज्ञक नाटक (प्राच्य भारतीया 1974)
- आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की संगीतिकाएँ (योषा 1974)
- मध्यकालीन भक्ति आंदोलन (राष्ट्रसेवक 1975)
- असमिया साहित्य में शिवाजी (राष्ट्रसेवक, 1975)
- शंकरदेव की भक्ति (अंकियानाटस्मृति ग्रंथ 1977)
- हिंदी साहित्य को असम की देन (डॉ॰ महिक मोहम्मद संपादित 'हिंदी साहित्य को हिंदीतर प्रदेशों की देन' में संकलित 1977)
- असमिया साहित्य में हास्य रस ('भैया जी बनारसी अभिनंदन ग्रंथ' 1977)
- असमिया कृष्ण काव्य और सुरसागर (भारतीय कृष्ण काव्य और सुरसागर(डॉ॰ नगेन्द्र) 1979)

- असम में हिंदी भाषा और साहित्य का विकास (हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास न. प्र. सभा, काशी)
- अनंत कंदली रामायण (पूर्वोत्तर की झाकी सं० धर्म तिवारी 1980)
- सुरजदास कृत 'रामजनम' (प्रगति 1981)
- निराला की कविता में बसंत (प्रगति 1982)
- निराला की कविता में बसंत (प्रगति 1982)
- असमी वाङ्मय के श्रेष्ठ रत्न (ज्ञान विविधा 1982)
- मणिपुरी वाङ्मय के श्रेष्ठ रत्न (ज्ञान विविधा 1982)
- ख़ासी वाङमय के श्रेष्ठ रत्न (ज्ञान विविधा 1982)
- गारो वाङ्मय के श्रेष्ठ रत्न (ज्ञान विविधा 1983)
- रामचरितमानस का प्रथम असमिया अनुवाद (ज्ञान विविधा, 1983),
- साबिन आलुन (कारबी रामायण) (परिषद पत्रिका)
- हिंदी और असमिया के मृगावती सज्ञक काव्य (प्रगति 1983)
- हिंदी और असमिया के मधुमालती सज्ञक काव्य (प्रगति 1984)
- हिंदी में मौलिक आलोचना सिद्धान्त (युवाशक्ति 1985)
- गुप्तजी: राम और राष्ट्र के चारण (मणिपुर हिंदी परिषद पत्रिका 1987)
- राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त (राष्ट्रसेवक 1987)
- रामचरित मानस का क्वाचिद्न्यतोपि (राष्ट्रसेवक 1988)
- मणिपुर: किंचित प्राचीन संदर्भ (मणिपुर विविध संदर्भ 1988)
- राधा और मणिपुरी वैष्णव भक्ति (मणिपुर भाषा और संस्कृति 1988)
- मणिपुर में वैष्णव मत का विकास (प्रागज्योतिष 1989)
- हिंदी की प्रथम रामायण (राष्ट्रसेवक 1990)
- भक्क्त कवि विष्णुदास (राष्ट्रसेवक 1990)

- माधवदेव के कृष्ण (समन्वय 1991)
- हिंदी कविता में बिम्ब विधान (समन्वय 1992)
- हिंदी तथा असमिया में भारतेन्दु कालीन नयी चेतना (भारतेन्दु: पुनर्मूल्यांकन के परिदृश्य, के.हि.स., आगरा 1983)
- महापुरुष माधवदेव : जीवनवृत (महापुरुष श्री श्री माधवदेव, बरपेटा सत्र 1996)
- महापुरुषीया भक्ति धर्म और माधवदेव (महापुरुष श्री श्री माधवदेव, बरपेटा सत्र 1996)
- तुलसीदास पूर्व ग्रंथ रामकाव्य (समन्वय 1997)
- असमिया भाषा और साहित्य (शोधधारा 2012)
- अरुणद्री से अरुणाचल (अरुणप्रभा 2001)
- बिहु: असम का जातीय त्योहार (पिनाक 2010)
- कवि ईश्वर प्रसाद मय (2007)
- गजलगो डॉ॰ स्वर्णकिरण (2008)
- भारत में शिक्षा तब और अब (सेवा सुरभि विशेषांक)
- ब्रजावली साहित्य (पिनाक पटना 2009)
- द्यूत क्रीडा (नई धारा 2011)
- इंडिया दैह इज भारत (नई धारा 2012)
- पूर्वोत्तर भारत में ब्रजावली साहित्य (पिनाक 2008)
- गाय (सवेरा 2012)
- नारी का सबलीकरण और शिक्षा (2012)
- महिला के पर्यायवाची शब्द (2012)
- भारत, भारतीयता और हम (सेवा सुरभि विशेषांक 2012)

असमिया में रचित लेख

- शंकरदेव मूल्यायनर समस्या (श्री बापचन्द्र महंत द्वारा अनूदित,नीलाचल 1972)
- शंकरदेवर गीत-संगीत (आलोक बिहू संख्या, 1972),
- उमापति आरू शंकरदेवर पारिजात हरण तुलनात्मक अध्ययन (असम साहित्य सभा पत्रिका 1973)
- हाजारीकार दृष्टिभंगित शिवाजी (हाजारीकार साहित्य सभा पत्रिका 1973)
- शंकरदेवर काव्यरूप (आलोक अप्रैल-मई 1976)
- शंकरदेवर लालित्य उदभावन (आलोक, जून 1976)
- शंकरदेवर काव्य सौष्ठव (आलोक जुलाई-अगस्त 1976)
- शंकरदेवर साहित्य कर्म, क्रिया आरू कृपा (दैनिक असम, 1976),
- नवकान्त बरुवार काव्य सिद्धान्त (असम साहित्य सभा पत्रिका 1977)
- ओंकियानाटर प्रेरोणास्रोत (मणिकुट 1977)
- समग्र क्रांति (आलोक, 1977)
- नाट्यकार माधवदेव (प्रागज्योतिष भवचालिहा संपादित, 1978)
- ब्रजावली: अंकियानाट आरू बरगीतोर भाषा ('शंकरी संस्कृतिर अध्ययन' भवचालिहा संपादित, 1978)
- प्रेमचंदर चिंताधारा ('प्रेमचंद : एटि दृष्टि' परेशचन्द्र देव शर्मा संपादित, 1980)
- शंकरदेवर काव्यादर्श ('शंकरी साहित्यर समीक्षा' भवचालिहा संपादित, 1981)
- महापुरुष माधवदेवर ब्रह्मर स्वरूप ('माधवदेवर अध्ययनर भूमिका' भवचालिहा संपादित, 1981)
- असमिया साहित्यत कृष्ण ('असम साहित्य सभा' स्मृतिग्रंथ, उत्तर लखीमपुर, 1985)

अंग्रेजी में लिखित लेख-

- दी लिटेररी वर्क्स ऑफ शंकरदेव (शंकरदेव स्टडीज़ इन कल्चर भवचलिहा संपादित 1978)
- महेश्वर नेऔग : ए क्रिटिक एण्ड लिटेररी हिस्टोरियन (डॉ॰ महेश्वर अभिनंदन ग्रंथ में प्रकाशित)
- शंकरदेव ए ट्रेड सेंटर इन असमीज (महापुरुष शंकरदेव भव चलिहा संपादित 1981)
- ऑरिजिन एण्ड डेवलपमेंट ऑफ नेशनलिज़्म इन इण्डिया (भारत एकता परिषद की गोष्टी में प्रस्तुत आलेख, 1993)
- दि भागवद कल्चर: मीन्स ऑफ पीस एण्ड हारमोनि ('इस्कन', मणिपुर द्वारा आयोजित सेमिनार में प्रस्तुत आलेख, 1994)
- ओरिजिन एण्ड डेवलपमेंट ऑफ वैष्णविज़्म इन असम (आतमबापू शर्मा व्याख्यान माला के अंतर्गत दिये गये दो व्याख्यान, 1995)
- दि भक्ति मूवमेंट एण्ड एकल्चरेशन ऑफ दि सवालटनर्स (डिब्रूगड़ विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग द्वारा आयोजित सेमिनार में दिया गया मुख्य व्याख्यान, 1999)

संपादित कृतियाँ हैं-

- शंकरदेव के नाटक, (अखवार घर, गुवाहाटी 1975)
- माधवदेव के नाटक (अखवार घर, गुवाहाटी 1975)
- शील बावनी (परिषद पत्रिका पटना 1968)
- बरगीत शंकरदेव (परिषद पत्रिका पटना 1975)
- पदमाभरण (भारती भवन, पटना,1964)
- छीहल बावनी (मरुभारती, पिलानी, 1966)
- डूँगर बावनी (मरुभारती, पिलानी, 1968)

- भाषा बावनी (परिषद पत्रिका, पटना, 1968)
- निबंध निकुंज (अ॰ रा॰ प्र॰ समिति, गुवाहाटी, 1973)
- हिंदी नव मंजूषा (अ॰ रा॰ प्र॰ समिति, गुवाहाटी, 1974)
- हिंदी नव मंजरी (अ॰ रा॰ प्र॰ समिति, गुवाहाटी, 1974)
- आठ एकांकी (अ॰ रा॰ प्र॰ समिति, गुवाहाटी, 1974)
- जरासंध-बध नाट ('प्राच्यभारती' गुवाहाटी, 1975)
- बरगीत (शंकरदेव की ग्रंथ रचनाएँ) ('परिषद पत्रिका', पटना, 1975)
- प्रताप बावनी (युवशक्ति, गुवाहाटी, 1979)
- अष्ठाप्द्तीर्थ बावनी (युवशक्ति, गुवाहाटी, 1979)
- सूरजदास कृत 'रामजन्म' ('प्राच्य भारती' गुवाहाटी, 1976)
- कविकंकण छीहल और उनकी कृतियाँ (1980)
- जैन बावनी काव्य (1982)
- संदेश रासक (असमिया) (1983)

अनूदित कृतियाँ हैं

- मृत्युंजय
- असमिया वर्ण प्रकाश
- साबिन आलुन (कारबी रामायण)

डॉ॰ 'मागध' मूलत: अध्यापक और अध्येता रहे है । इन्होंने मूलत: ग्रंथों का प्रणयन हिंदी में किया है, किन्तु समय के अनुसार असमिया और अँग्रेजी में भी लिखकर अपनी विद्वता की छाप बुद्धिजीवी समाज पर छोड़ने में सफल सिद्ध हुए है । कुल रचनाओं में पचास किताबें (स्वरचित-21, संपादित-23, अनूदित-5) और लेखों में एक सौ से अधिक (हिंदी में अस्सी, असमिया में बीस से अधिक और अँग्रेजी में सात) अबतक प्रकाशित हो चुके है । असमिया निबंधों

में दस निबंधों का एक संकलन डॉ. अनंत कुमार नाथ ने संपादित और प्रकाशित किया है । इनकी एक पुस्तक "महापुरुष माधवदेव :व्यक्तिव और कृतित्व" का असमिया में अनुवाद हुआ है जो बहुत पहले ही प्रकाशित हो चुका है । दूसरी पुस्तक "शंकरदेव: साहित्यकार और विचारक" का असमिया अनुवाद कर इन्होंने स्तुत्य कार्य किया है । इन सारे कार्यों की परिणति कुछ उपलब्धियों में हुई है । कई पुरस्कार और सम्मान का मिलना इसके स्पष्ट संकेत है ।` इन्हें प्राप्त पुरस्कारों की चर्चा करना आवश्यक है, जो अग्रांकित हैं –

प्रो॰'मागध' को प्राप्त पुरस्कार/सम्मान –

- काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पुरस्कार 1962 ई॰
- उत्तर प्रदेश-शासन पुरस्कार 1975 ई॰
- उत्तर प्रदेश ग्रंथ-संस्थान पुरस्कार 1978 ई॰
- असम साहित्य सभा (बरपेटा शाखा) सम्मान 1974 ई॰
- धर्मालोचनी सभा सम्मान, शुवालकुची, असम 1977 ई॰
- मानस-संगम पुरस्कार, कानपुर (उत्तर प्रदेश) 1985 ई॰
- सौहार्द-सम्मान (उत्तर प्रदेश ग्रंथ-संस्थान) 1990 ई॰
- शंकर पुरस्कार (के. के. बिड़ला फ़ाउंडेशन, नई दिल्ली द्वारा जगदगुरु शंकराचार्य के नाम पर स्थापित) 1997 ई॰
- शांति प्रियदर्शी रचना पुरस्कार 2004 ई॰
- नालंदा जिला पेंशनर सम्मान 2008 ई॰
- साहित्य साधना सम्मान पुरस्कार (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद) 2009 ई॰
- सुदामा परमेश्वर सम्मान 2010 ई॰
- असम हिंदी लेखक सम्मान 2010 ई॰
- भारतीय हिंदी लेखक सम्मान 2011 ई॰

- भारतीय हिंदी परिषद सम्मान (39 वां अधिवेशन) 2012 ई॰
- हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 65 वां अधिवेशन, शांति निकेतन के राष्ट्र भाषा परिषद के अध्यक्ष एवं अध्यक्षीय अभिवादन 2013 ई॰

'मागध' जी ने हिंदी ही नहीं असमिया साहित्य के भंडार को भी परिपुष्ट किया है । उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से न केवल हिंदी साहित्य एवं भाषा पर विस्तृत प्रकाश डाला बल्कि असमिया आलोचनात्मक ग्रंथों के माध्यम से असमिया वैष्णव साहित्य, रामायणी साहित्य तथा असम में वैष्णव मत के प्रचारक शंकरदेव और उनके शिष्य माधवदेव को राष्ट्रीय प्रेक्षापट में लाए और हिन्दू धर्म में प्रचलित पूज्य देव-देवी की प्रमाणिकता को भी प्रतिष्ठित किया । हिंदी साहित्य के इतिहास, भारतीय अलंकार परंपरा, अलंकारों का वर्गीकरण, परिभाषा, महत्त्व, संघटना और आधुनिक कविताओं में अलंकारों का विधान आदि विषयों को विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया । उन्होंने अपने ग्रंथ तथा लेखनियों के जरिए हिन्दू देवी-देवता विषयक भ्रामक विचार धारा का युक्ति सहित खंडन किया है और उनकी प्रमाणिकता को प्रतिष्ठित किया है । असमिया आलोचनात्मक कृतियों के माध्यम से वैष्णव धर्म के प्रवर्तक शंकरदेव और माधवदेव एवं असमिया समाज व्यवस्था को राष्ट्रीय स्तर पर लाए और भारतीय साहित्य के वङ्मय को समृद्ध किया । उन्होंने अपनी रचनाओं तथा लेखों के जरिए अपने भावों, विचारों को तो प्रकट किया ही साथ ही साहित्य के क्षेत्र में प्रमाणिकता की उपोयोगिता को भी प्रतिष्ठित किया । 'मागध' जी की साहित्य साधना उनके कर्म जीवन से शुरू हुई और अद्यावधि वे इस कार्य में जुटे है ।

प्रो॰ 'मागध' जी को उनके साहित्यिक अवदान के लिए कई पुरस्कारों तथा सम्मानों से सुशोभित किया गया है । जिसका उल्लेख किया जा चुका है ।

संदर्भ सूची :-

१. 'मागध', डॉ॰ कृष्ण नारायण प्रसाद, *प्रजापति ब्रह्मा,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999, पृष्ठ संख्या 200

२. नाथ, प्रो॰अनंत कुमार,(सम्पा॰) *संस्कृति-साधक प्रो॰ कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' : व्यक्तित्व और कृतित्व,* अभिनंदन समारोह समिति, गौहाटी, 2003, पृष्ठ संख्या 41

३. 'मागध' प्रो॰कृष्ण नारायण प्रसाद, *'ग्रंथ बावनी काव्य'* शोध प्रबंध, पृष्ठ संख्या परिशिष्ट

४. कुबेरनाथ राय जी का 'मागध' जी के लिए एक पत्र – १० फरवरी, १९७५, यह पत्र 'मागध' जी के पास उपलब्ध है ।

५. 'मागध', प्रो॰कृष्ण नारायण प्रसाद, *माधवदेव : व्यक्तित्व और कृतित्व,* पू. मा. स., गुवाहाटी, 1979, पृष्ठ संख्या 13

६. उस समय मध्यप्रदेश से प्रकाशित अखबारों को देखा जा सकता है ।

७. शर्मा, परेशचंद्र देव, राष्ट्र भाषा के अतीन्द्र प्रहरी (आलेख), पृष्ठ संख्या 16

८. नाथ, प्रो॰अनंत कुमार,(सम्पा॰) *संस्कृति-साधक प्रो॰ कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' : व्यक्तित्व और कृतित्व,* अभिनंदन समारोह समिति, गौहाटी, 2003, पृष्ठ संख्या 21

९. नाथ, प्रो॰अनंत कुमार,(सम्पा॰) *संस्कृति-साधक प्रो॰ कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' : व्यक्तित्व और कृतित्व,* अभिनंदन समारोह समिति, गौहाटी, 2003, पृष्ठ संख्या 190

१०. नाथ, प्रो॰अनंत कुमार,(सम्पा॰) *संस्कृति-साधक प्रो॰ कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' : व्यक्तित्व और कृतित्व,* अभिनंदन समारोह समिति, गौहाटी, 2003, पृष्ठ संख्या 187

११. चलिहा, प्रो॰ भव प्रसाद, दैनिक असम में प्रकाशित संस्मरण 'असम बंधु कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध'', 7 अप्रैल, 2003

१२. नाथ, प्रो॰अनंत कुमार,(सम्पा॰) *संस्कृति-साधक प्रो॰ कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' : व्यक्तित्व और कृतित्व,* अभिनंदन समारोह समिति, गौहाटी, 2003, पृष्ठ संख्या 48

१३. नाथ, प्रो॰अनंत कुमार,(सम्पा॰) *संस्कृति-साधक प्रो॰ कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' : व्यक्तित्व और कृतित्व,* अभिनंदन समारोह समिति, गौहाटी, 2003, पृष्ठ संख्या 56

१४. नाथ, प्रो॰अनंत कुमार,(सम्पा॰) *संस्कृति-साधक प्रो॰ कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' : व्यक्तित्व और कृतित्व,* अभिनंदन समारोह समिति, गौहाटी, 2003, पृष्ठ संख्या 65

१५. नाथ, प्रो॰अनंत कुमार,(सम्पा॰) *संस्कृति-साधक प्रो॰ कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' : व्यक्तित्व और कृतित्व,* अभिनंदन समारोह समिति, गौहाटी, 2003, पृष्ठ संख्या 174

१६. 'मागध', प्रो॰ कृष्ण नारायण प्रसाद, *ग्रंथ साहित्य युग और धारा,* भरती भवन, पटना, 1965 पृष्ठ संख्या 1

१७. 'मागध', प्रो॰ कृष्ण नारायण प्रसाद, *काव्य के विभिन्न अंग,* साथी प्रकाशन, पटना, 1968, पृष्ठ संख्या ग

१८. 'मागध', प्रो॰ कृष्ण नारायण प्रसाद, *मगध और उसके महत्त्वपूर्ण स्थान,* सुदामा परमेश्वर साहित्य सम्मान संस्थान, बिहारशरीफ़, नालंदा, 2012, पृष्ठ संख्या